दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (गुजरात) का मुखपत्र

संतप्त-मानस शांत हों,
जिनके गुणों के गान में।
वे वर्द्धमान महान जिन,
विचरें हमारे ध्यान में॥

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३२ : अंक १०

अप्रेल, १९७७

आत्मधर्म [३८२]

[शाश्वत सुख का मार्गदर्शक आध्यात्मिक हिन्दी मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ अब मोय तार लेहू महावीर
२ एक बार यह वीर की वाणी सुन तो सही!
३ संपादकीय : [भगवान महावीर और उनके अनुयायी युगपुरुष कानजीस्वामी]
४ णमिऊण जिणं वीरं [नियमसार प्रवचन]
५ द्रव्यदृष्टि ही सम्यग्दृष्टि
६ न ज्ञान न दर्शन न चारित्र [समयसार प्रवचन]
७ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
८ ज्ञान-गोष्ठी
९ समाचार दर्शन
१० पाठकों के पत्र
११ प्रबंध संपादक की कलम से

श्री महावीर परमात्मा समस्त मोह-राग-द्वेष को जीतनेवाले हैं, अत: 'जिन' हैं और चैतन्य के पराक्रम से कर्मों के विजेता हैं, अत: 'वीर' हैं। वे श्री वर्द्धमान, सन्मति, अतिवीर और महावीर नामों से युक्त हैं। वे महावीर भगवान ही परम ऐश्वर्य अर्थात् केवलज्ञानादि को प्राप्त होने के कारण परमेश्वर हैं। इंद्र और गणधरदेवों के भी देव होने के कारण देवाधिदेव हैं।

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३२ [३८२] अंक : १०

अब मोय तार लेहू महावीर॥ अब०॥
सिद्धारथ-नन्दन जगवन्दन,
पाप निकन्दन धीर॥ अब०॥
ज्ञानी ध्यानी दानी जानी,
वानी गहन गम्भीर।
मोक्ष के कारण दोष-निवारण,
रोष-विदारण वीर॥ अब०॥
समता सूरत आनन्द पूरत,
चूरत आपद पीर।
बालयती दृढ़व्रती समकिती,
दुख-दावानल नीर॥ अब०॥
गुण अनन्त भगवन्त अन्त नहिं,
शशि कपूर हिम हीर।
'द्यानत' एकहु गुण हम पावें,
दूर करै भव-भीर॥ अब०॥

एक बार यह वीर की वाणी सुन तो सही !

महावीर जयंती के पवित्र पर्व पर प्रवचन करते हुए पूज्य स्वामीजी ने कहा :-

आज भगवान महावीर का मंगल जन्म-दिवस है। वे तीर्थंकर हुए - उससे पूर्व अनादि संसार में परिभ्रमण करते-करते एक भव में सम्यग्दर्शन प्राप्त किया और फिर उन्नतिक्रम में आगे बढ़ते-बढ़ते तीसरे पूर्वभव में मुनिदशा में सोलहकारण भावनापूर्वक उन्हें तीर्थंकर प्रकृति का बंध हुआ। फिर अंतिम भव में इस भरतक्षेत्र में अंतिम तीर्थंकर के रूप में अवतरित हुए, इंद्रों ने उनका जन्म-कल्याणक महोत्सव मनाया; उसका आज दिवस है।

भगवान के आत्मा को सम्यग्दर्शन तथा अवधिज्ञान तो जन्म से ही थे। पश्चात् तीस वर्ष की उम्र में कुमार अवस्था में उन्हें जातिस्मरणज्ञान हुआ। पूर्वभवों में आत्मा कहाँ था, वह देखा और वैराग्य में एकदम वृद्धि हो गयी, जिससे दीक्षा लेकर मुनि हुए। मुनि होकर आत्मा के ज्ञान-ध्यानपूर्वक साढ़े बारह वर्ष तक तप करते-करते केवलज्ञान प्रकट किया और अरहंत परमात्मा हुए। आत्मानंद में झूलते-झूलते भगवान केवलज्ञान को प्राप्त हुए। केवलज्ञान होने के पश्चात् उन वीरनाथ भगवान ने आत्मस्वभाव का संदेश दिया।

एकबार यह वीर की वाणी सुन तो सही ! वीरनाथ का संदेश है कि - तेरा आत्मा ही ऐसा आनंदस्वरूप है जिसे जानने से उसमें तन्मय होकर परम सुख का स्वाद आता है। परोन्मुख होकर पर को जानने से कहीं सुख का वेदन नहीं होता। आत्मा ही स्वयं ऐसा सारभूत है कि जिसे जानने से सुख प्राप्त होता है। अतः एक आत्मा को ही जान, उसका ही अनुभव कर, उसमें ही जम जा; तू भी भगवान बन जायेगा। स्वभाव से तो भगवान है ही, पर्याय में भी बन जायेगा।

सम्पादकीय

भगवान महावीर

और

उनके अनुयायी युगपुरुष कानजीस्वामी

यह एक संयोग ही है कि इस वर्ष भगवान महावीर एवं सत्पुरुष कानजीस्वामी दोनों का जन्मदिवस माह अप्रेल में आया है। २ अप्रेल १९७७ को महावीर जयंती है और २० अप्रेल १९७७ को है कानजीस्वामी का जन्मदिवस।

महावीर जयंती का दिन परम पावन दिन है। इस दिन भगवान महावीर का जन्म हुआ था तथा इसी दिन कानजीस्वामी ने आज से ४३ वर्ष पूर्व स्थानकवासी संप्रदाय एवं उसका गौरवपूर्ण गुरुत्व, मान-प्रतिष्ठा आदि सब कुछ छोड़कर एक श्रावक के रूप में दिगम्बर धर्म स्वीकार किया था।

भगवान महावीर पूर्ण वीतरागी-सर्वज्ञ साक्षात् परमात्मा थे। वे युगांतरकारी अलौकिक दिव्य महापुरुष थे। उन्होंने तत्कालीन युग को प्रभावित ही नहीं किया, वरन् उस युग में एक क्रांतिकारी परिवर्तन प्रस्तुत कर दिया। उनके युगांतरकारी आलोक का प्रभाव आज भी विद्यमान है।

वे युग-युग तक आलोक प्रदान करनेवाले दीप्तिमान दिवाकर थे। स्याद्वाद-वाणी में अनेकांतात्मक वस्तु का जो स्वरूप उनके द्वारा प्रतिपादित हुआ, वह आज भी आत्मार्थियों का पथ आलोकित कर रहा है।

भगवान महावीर ने प्रत्येक वस्तु की पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा की और यह भी स्पष्ट किया कि प्रत्येक वस्तु स्वयं परिणमनशील है। उसके परिणमन में परपदार्थ का कोई हस्तक्षेप नहीं है। यहाँ तक कि परमपिता परमेश्वर (भगवान) भी उसकी सत्ता का कर्ता-हर्ता नहीं है। जन-जन की ही नहीं, अपितु कण-कण की स्वतंत्र सत्ता की उद्घोषणा तीर्थंकर महावीर की वाणी में हुई।

दूसरों के परिणमन या कार्य में हस्तक्षेप करने की भावना ही मिथ्या, निष्फल और दु:ख का कारण है; क्योंकि सब जीवों के जीवन-मरण, सुख-दु:ख स्वयंकृत व स्वयंकृत-कर्म के फल हैं। एक को दूसरे के सुख-दु:ख, जीवन-मरण का कर्ता मानना अज्ञान है।

भगवान महावीर ने कर्तावाद का स्पष्ट निषेध किया है। कर्तावाद के निषेध का तात्पर्य मात्र इतना ही नहीं है कि कोई शक्तिमान ईश्वर जगत का कर्ता नहीं है; अपितु यह भी है कि कोई भी द्रव्य किसी दूसरे द्रव्य का कर्ता-हर्ता नहीं है। किसी एक महान शक्ति को समस्त जगत का कर्ता-हर्ता मानना एक कर्तावाद है, तो परस्पर एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य का कर्ता-हर्ता मानना अनेक कर्तावाद।

भगवान महावीर की वाणी का प्रतिपादन केन्द्र-बिन्दु एकमात्र आत्मा है। यद्यपि उनकी वाणी में आनुसांगिक रूप से अनेक विषय आये हैं। तथापि घूम-फिर कर सभी एक आत्मा पर ही केन्द्रित हो जाते हैं।

धर्म परिभाषा नहीं, प्रयोग है और जीवन है धर्म की प्रयोगशाला। भगवान महावीर परिभाषाएँ रटकर धर्मात्मा नहीं बने थे, उन्होंने उसे जीवन में उतारा था। भेद-विज्ञान के बल से समस्त परपदार्थों से भिन्न निजात्मा को जानकर, मानकर, अनुभवकर वे उसी में जम गये थे, रम गये थे, समा गये थे।

और जब वे वीतरागी-सर्वज्ञ हो गये तो उनकी दिव्य-वाणी में अनेकांतात्मक वस्तु का सही स्वरूप स्याद्वाद शैली में सहज ही प्रस्फुटित हुआ था। उन्होंने अपनी मान्यताएँ बलात् किसी पर थोपी नहीं। अपने मत के प्रचार के लिये वे किसी से लड़े-झगड़े नहीं, वाद-विवाद के अखाड़ों में नहीं उतरे। वे तो जगत से पूर्णत: अलिप्त ही रहे। उनका आचरण पूर्णत: अहिंसक रहा। उन्होंने न किसी का बुरा किया, न किसी को भला-बुरा कहा; यहाँ तक कि उन्होंने तो किसी का भला-बुरा सोचा भी नहीं।

अहिंसात्मक आचार, अनेकांतात्मक विचार, स्याद्वादमयी वाणी एवं अपरिग्रही जीवन ही उनके जीवन के अभिन्न अंग रहे।

आज से २५३३ वर्ष पहले जो पथ विपुलाचल पर भगवान महावीर ने दिखाया था -

उसी पथ के एक पथिक हैं युगपुरुष श्री कानजीस्वामी; जिन्होंने वर्तमान जैन आध्यात्मिक जगत को सर्वाधिक प्रभावित किया है।

युगपुरुष उसे कहते हैं जो युग को एक दिशा दे, भ्रमित युग को सन्मार्ग दिखाये; मात्र दिखाये ही नहीं, एक वैचारिक क्रांति उत्पन्न करके जगत को उस पर विचार करने के लिये बाध्य कर दे। यदि वह क्रांति आध्यात्मिक हो और अहिंसक उपायों द्वारा संपन्न की गयी हो तो उसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

कानजीस्वामी एक ऐसे युगपुरुष हैं, जिन्होंने अपने जीवन में तो परिवर्तन किया ही; साथ ही जैन जगत में भी आध्यात्मिक क्रांति उत्पन्न कर दी और बाह्य क्रियाकांड में उलझे हुए समाज को भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित शाश्वत शांति की प्राप्ति का सन्मार्ग दिखाया। उन्होंने सोते हुए समाज को मात्र जगाया ही नहीं; वरन् उसे मानव-जीवन की सफलता एवं सार्थकता पर विचार करने के लिये झकझोर कर सचेत कर दिया एवं अपनी पूर्वाग्रहग्रस्त मान्यताओं पर एक बार पुनर्विचार करने के लिये बाध्य कर दिया है।

वे इस युग के बहुचर्चित महापुरुष हैं। चाहे पक्ष में हो चाहे विपक्ष में, जैन समाज में आज जितनी चर्चा उनके बारे में चलती है; अन्य किसी के बारे में नहीं।

जैन समाज के प्रसिद्ध तटस्थ विद्वान सिद्धांताचार्य पंडित कैलाशचन्द्रजी वाराणसी, २९ जुलाई १९७६ के जैन संदेश के संपादकीय में लिखते हैं :-

''कोई स्वीकार करे या न करे, किंतु यदि कभी किसी तटस्थ इतिहासज्ञ ने जैन समाज के इन तीन दशकों का इतिहास लिखा तो वह इस युग के इस काल को **कानजी युग** ही स्वीकार करेगा। क्योंकि वह जब इस समय के पत्रों को उठाकर देखेगा तो उसे उन पत्रों की चर्चा का प्रधान विषय कानजी ही दृष्टिगोचर होंगे। पत्रों में विरोध भी उसी का होता है, जिसका कुछ विशेष अस्तित्व होता है। विरोध से ही व्यक्ति का व्यक्तित्व आंका जाता है। जो उस विरोध में भी अडिग रहता है, वही उसकी महत्ता का सूचक होता है।''

स्वामीजी सच्चे अर्थों में युगपुरुष हैं, क्योंकि उन्होंने युग को आंदोलित किया है। वे युग से नहीं, युग उनसे प्रभावित हुआ है। इस भौतिकवादी युग में जहाँ आज का मानव भौतिक

चमक-दमक में उलझ कर रह गया है, युग के प्रवाह में वह गया है, उसके प्रभाव से अछूता नहीं रह सका है; वहाँ आप पर इस अधोगामी युग का कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता, अपितु आपके द्वारा प्रवाहित आध्यात्मिक क्रांति की धारा ने लाखों लोगों का जीवन बदल दिया है। सैकड़ों युवक-युवतियों ने ब्रह्मचर्य धारण किया है, हजारों लोगों ने गहरा तात्त्विक अभ्यास किया है एवं लाखों-लाखों लोगों ने आध्यात्मिक चर्चा में रस लेना आरंभ कर दिया है।

बम्बई जैसी मोहमयी मायानगरी में जब आपके आध्यात्मिक प्रवचन होते हैं तो ज्येष्ठ की दोपहरी में दिन के तीन बजे की भीषण गर्मी में भी बीस-बीस हजार का जनसमुदाय मंत्रमुग्ध होकर लगातार महीनों सुनता है, आधा घंटा पहिले से आपकी सभा में उपस्थित रहता है।

राग से भिन्न आत्मा की गूढ़ चर्चा में इतनी विशाल जनता का इतना रुचिवंत होना अपने आप में एक आश्चर्य है, जो आपके युग-पौरुष को सहज ही सिद्ध कर देता है।

बाह्य क्रियाकांड और वेष के नाम पर भोली जनता को प्रभावित कर लेना, 'धर्म खतरे में है' का नारा देकर उत्तेजित कर देना - एक बात है और गहन तात्त्विकचर्चा एवं अनुत्तेजित प्रवचन-शैली से जगत में शांत, आध्यात्मिक वातावरण पैदा करना - दूसरी बात। स्वामीजी ने क्रियाकांड, मंत्र-तंत्र और वेश के बल पर नहीं; अजस्र ज्ञानाभ्यास के बल पर महावीर की वाणी के मर्म को उद्घाटित कर जगत् को जागृत किया है।

यद्यपि भगवान महावीर से लेकर आज तक एक से एक बढ़कर हजारों समर्थ आचार्य, मुनिराज एवं विद्वान हुए हैं, जिन्होंने इनसे भी अधिक महान कार्य किये हैं; किंतु वे विभूतियाँ आज हमारे बीच नहीं हैं। वे सब हमारे लिये भगवान महावीरवत ही पूज्य एवं आदरणीय हैं।

महावीर की वाणी की रहस्योद्घाट विद्यमान विभूतियों में स्वामीजी एक युगांतरकारी विभूति हैं; जिन्हें अपने बीच पाकर आज जैन-जगत् गौरवान्वित है।

स्वामीजी नया कुछ नहीं कहते। वे तो भगवान महावीर की वाणी में समागत एवं कुन्दकुन्दादि आचार्यों द्वारा प्रतिपादित वाणी का मर्म ही अपनी सीधी-सादी सरल भाषा में उद्घाटित करते हैं।

स्वयं की लेखनी से कुछ भी न लिखकर सिर्फ वाणी के बल पर जगत को इतना अधिक प्रभावित करनेवाले भगवान महावीर तो थे ही, उनके बाद भी अनेकाअनेक आचार्य, मुनि व विद्वद्वर्य हुए; पर वर्तमान युग में विद्यमान स्वामीजी ही एक ऐसे युग-पुरुष हैं, जिन्होंने एक अक्षर न लिखकर सिर्फ वाणी के बल पर इतनी बड़ी क्रांति कर दी है। यह अपने आप में एक आश्चर्य है।

आश्चर्यों के निधान युगपुरुष स्वामीजी की कार्यशैली भी अद्‌भुत है। यद्यपि वे प्रवचन व तत्त्वचर्चा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं करते; तथापि उनके प्रभाव से, पुण्य-प्रताप से हो रहे तत्त्वप्रचार और सहज हो रही वीतरागमार्ग की प्रभावना को देखकर आश्चर्य होता है।

देश की आजादी पाने और सुरक्षित रखने के लिये मारनेवालों की फौज तो सभी तैयार करते हैं, पर महात्मा गाँधी ने मरनेवालों की फौज तैयार की थी और उसके ही बल पर भारत को आजाद भी कर दिखाया। ईंट का जवाब पत्थर से देनेवाले वीर तो बहुत मिलेंगे, पर गाँधीजी ने ऐसे वीरों की कतार खड़ी की जो गोली का जवाब गाली से भी न दें। उन्होंने गाली बकने और गोली मारनेवालों के विरुद्ध गोली खानेवाले देशभक्तों के बल पर आजादी की सफल लड़ाई लड़ी थी।

जो कार्य गाँधी ने राजनीति के क्षेत्र में अहिंसा के बल पर कर दिखाया, वही काम जैन अध्यात्म के क्षेत्र में कानजीस्वामी ने 'उत्तर नहीं देना ही सबसे बढ़िया उत्तर है' (No Reply is Best Reply) की नीति पर चलकर कर दिखाया। जो काम हम सब दौड़-दौड़कर नहीं कर पा रहे हैं, वह काम उन्होंने एक जगह बैठकर मात्र दो समय प्रवचन व एक समय तत्त्वचर्चा करके कर दिखाया। उन्होंने सदाचारी, शांत; पर दृढ़श्रद्धानी अनुशासित तत्त्वाभ्यासियों की एक लंबी कतार खड़ी कर दी है - जिनमें बालक, युवक, प्रौढ़ और वृद्ध पुरुष एवं महिलाएँ सभी हैं।

उनके अनुयायी तो उनके बताये मार्ग पर चलते ही हैं, पर जो लोग उनके जिन कार्यों की आलोचना करते हैं, वे भी आज वही करने लगे हैं। शिविरों की आलोचना करनेवाले शिविर लगा रहे हैं, समयसार पढ़ने को मना करनेवाले समयसार पढ़ रहे हैं, मंडलों का विरोध करनेवाले मंडल बना रहे हैं।

विरोध करनेवालों का सदा यही हाल रहा है। एक समय जो लोग शास्त्रों को छपाने का विरोध करते नहीं थकते थे, वे आज धड़ाधड़ शास्त्र छपा रहे हैं।

समस्त युग पर जिसकी छाप पड़े, वही युगपुरुष है – इस अर्थ में आप सच्चे युगपुरुष हैं।

आज के युग में एक तो कोई ८७-८८ वर्ष की उम्र तक पहुँचता ही नहीं। कदाचित् कोई पहुँच भी जाये तो वह कानों से सुनता नहीं, उसे आँखों से दिखता नहीं, वह अर्द्धमृतकसम ही जीता है।

८७ वर्ष की उम्र में भी पूर्णतः सजग, अध्ययन, मनन, चिंतन, आत्मानुभवन, प्रवचन एवं तत्त्वचर्चा में नियमितरत युगांतरकारी युगपुरुष आपके ८८वें पावन जन्म-दिवस पर भगवान महावीर की पावन स्मृतिपूर्वक मंगल कामना करता हूँ कि आप शतायु हों एवं भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित मुक्ति का मार्ग सक्रियरूप से दिखाते रहें।

जय महावीर!

णमिऊण जिणं वीरं

परमपूज्य दिगंबर आचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की प्रथम गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहां दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है :-

णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदसंणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं ॥१॥

अनंत और उत्कृष्ट ज्ञानदर्शन जिनका स्वभाव है, ऐसे केवलज्ञानी और केवलदर्शनी जिन वीर को नमन करके केवली तथा श्रुतकेवलियों का कहा हुआ नियमसार मैं कहूँगा।

श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र को नमस्कार करके कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने इस प्रथम सूत्र में असाधारण मंगलाचरण किया है। वे कहते हैं कि जो केवली और श्रुतकेवलियों ने कहा है, ऐसे श्री नियमसार को मैं कहूँगा।

सर्वज्ञ को पहचानकर उनको नमस्कार करते हैं। अनंत और उत्कृष्ट ज्ञान-दर्शन जिनका स्वभाव है, वे सर्वज्ञ हैं। सर्वज्ञ ने जिस प्रमाण में विश्व को जाना, उसी प्रमाण में जगत में परिणमन होता है, उसमें फेरफार नहीं पड़ता।

सर्वज्ञ का ज्ञान तो अनंत और उत्कृष्ट है। दूसरे मति-श्रुत इत्यादि ज्ञान में अनंतता कही जाती है, किंतु वह उत्कृष्ट नहीं है। उत्कृष्ट ज्ञान तो केवलज्ञान है। ऐसे केवलज्ञानी जिनवीर को नमस्कार करके मैं इस नियमसार को कहूँगा।

मैं सर्वज्ञ को नमस्कार करता हूँ अर्थात् मेरे में अल्पज्ञता है, उसका मैं आदर नहीं करता; किंतु मेरे में सर्वज्ञता प्रकट होने की जो शक्ति है, उसी का आदर करता हूँ। विकल्प उत्पन्न हुआ है, इसलिये निमित्तरूप से सर्वज्ञ को नमस्कार किया है। तदुपरांत नियमसार को अर्थात् शुद्ध आत्मा को और मोक्षमार्ग को कहूँगा।

आचार्यदेव स्वयं श्री सीमंधर भगवान के पास गये थे और वहाँ केवली और श्रुतकेवलियों के पास से सीधा सुना था। इसीलिये कहते हैं कि केवली और श्रुतकेवलियों द्वारा कहा हुआ नियमसार कहूँगा। श्री कुन्दकुन्दाचार्य अंतर-अनुभव में झूलनेवाले महान संत थे। वे महाविदेहक्षेत्र में विराजमान श्री सीमंधर भगवान के पास लगभग दो हजार वर्ष पूर्व (विक्रम संवत् ४९ में) गये थे। यह बात परम सत्य है।

सीमंधर भगवान मुनिसुव्रतनाथ के समय में हुए हैं और अभी दीर्घकाल तक रहेंगे तथा भविष्य की चौबीसी के सातवें तीर्थंकर के समय में वे मोक्ष पधारेंगे। यहाँ बीस तीर्थंकर वर्तमान में विहार कर रहे हैं। उनके समवसरण में चक्रवर्ती, इंद्र तथा मुनिगण आकर धर्म श्रवण करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य भी वहाँ आठ दिन रहे थे।

लोगों को धर्म की खबर नहीं है। यह ऐसी अपूर्व चीज़ है कि जो एक सेकेंड भी धर्म करे तो अनंत संसार का नाश हो जाये।

मंगलाचरण में जिन्होंने चैतन्यस्वभाव का भान करके मोह-राग-द्वेष को जीत लिया है, ऐसे सर्वज्ञ वीर का नमस्कार किया है। राग का आदर करनेवालों को नमन नहीं किया।

टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव गाथा के प्रत्येक पद का तात्पर्य कहते हैं:-

प्रथम ही 'जिन' का अर्थ करते हैं। अनेक जन्मरूप अटवी को प्राप्त कराने के हेतुभूत समस्त मोह-राग-द्वेषादिक को जो जीत लेते हैं, वे 'जिन' हैं।

राग मेरे कल्याण के लिये अकिंचित्कर है और निमित्त तो मेरे में अत्यंत अकिंचित्कर है। ऐसा भान करके चैतन्य की श्रद्धा-ज्ञान और एकाग्रता के बल से जिन्होंने मोह-राग-द्वेष को जीत लिया है, वे ही 'जिन' हैं। अनेक जन्मरूपी वनों में भटकाने का कारण मोह-राग-द्वेष है। चैतन्य के भान से इनको जीत लें, वे ही 'जिन' हैं। ऐसे 'जिन' ही सच्चे देव हैं और वे ही कल्याण में निमित्तरूप होते हैं। ऐसे सर्वज्ञदेव के अतिरिक्त जो कुदेव-कुगुरु को कल्याण का निमित्त माने, वह मिथ्यादृष्टि है। कुदेव तो राग से लाभ मनवाते हैं अर्थात् कुदेव को माननेवाले ने राग को आदरणीय माना, वह तो अनंत जन्म-मरण में घुमाने का मूल है।

जो 'जिन' को नमस्कार करता है, वह जीव मोह-राग-द्वेष का आदर नहीं करता।

जिसने चैतन्य का भान करके सम्यग्दर्शन से मोह (मिथ्यात्व) को जीत लिया, ऐसी आठ वर्ष की बालिका भी श्रद्धा अपेक्षा से 'जिन' है और उच्च त्यागी द्रव्यलिंगी होकर भी राग से लाभ मानता हो तो वह 'जिन' नहीं; किंतु मोही है, मिथ्यादृष्टि है। श्रद्धा अपेक्षा से चतुर्थ गुणस्थान से ही 'जिन' संज्ञा प्रारंभ हो जाती है। सम्यग्दृष्टि पक्षी को भी 'जिन' कहते हैं। यहाँ तो जिसने पूर्ण मोह-राग-द्वेष को जीत लिया है, ऐसे 'पूर्ण जिन' की बात है। जहाँ आत्मभान हुआ, वहाँ चैतन्य की हुंडी का स्वीकार हो गया। अब चैतन्य में ठहरने में अल्प काल लगेगा।

साधकदशा में पूजा-भक्ति-स्वाध्याय आदि का राग होता है, किंतु वह मुक्ति का कारण नहीं - ऐसा धर्मी जानता है। 'जिन' ने समस्त मोह-राग-द्वेष जीत लिया है, अतः उनको नमस्कार करनेवाला जीव भी मोह-राग-द्वेष को जीतने के मार्ग में ही चलनेवाला होता है। मोह-राग-द्वेष को जो आदरणीय माने, वह 'जिन' को नमस्कार करनेवाला नहीं हो सकता। सभी तीर्थंकर 'जिन' और 'वीर' हैं; परंतु यहाँ वर्तमान शासन के नायकरूप में श्री वर्द्धमान भगवान को नमस्कार किया है।

'वीर' अर्थात् विक्रांत (पराक्रमी) - वीरता प्रकट करे, शौर्य प्रकट करे, कर्म-शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, वह 'वीर' है।

अपना ध्रुव चैतन्यस्वभाव ही परमतत्त्व है। उसकी प्रतीति करके उसी में स्थिर होना ही सच्चा पराक्रम है। स्वभाव की अस्ति की और विकार की नास्ति की 'प्रतीति' वह प्रथम सम्यग्दर्शनरूप पराक्रम है। सम्यग्दर्शन का ऐसा पराक्रम है कि वह किसी भी निमित्त को, राग को, अपूर्णता को अपने में अस्तिरूप से स्वीकार नहीं करता; ध्रुव चैतन्यतत्त्व को ही वह प्रतीति में लेता है।

चैतन्यस्वभाव में वीर्य को लगावे, वही सच्चा 'वीर' है; राग में धर्म माने, वह 'वीर' नहीं, उसके चैतन्य का पराक्रम प्रकट नहीं हुआ। चैतन्य के पराक्रम से कर्म-शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, वह 'वीर' है।

वास्तव में जड़कर्मों को जीतना नहीं है और राग को भी जीतना नहीं है। जब अंतर में चैतन्य का पराक्रम प्रकट करके एकाग्र हुआ, तब राग की उत्पत्ति ही नहीं होती और कर्म टल

जाते हैं अर्थात् कर्मों पर विजय प्राप्त की, ऐसा निमित्त से कहा जाता है; वास्तव में तो निमित्त में जीव का कोई पराक्रम ही नहीं है, कारण कि निमित्त तो जीव को स्पर्श ही नहीं करता।

निमित्त तो 'पर' है और 'पर' का 'स्व' में अत्यंताभाव है तथा राग का भी आत्मा के मूल स्वभाव में अत्यंताभाव है। जब राग में और आत्मा के स्वभाव में ही अत्यंत अभाव है तो फिर निमित्त तो कहाँ रह गया? निमित्त आत्मा में कुछ कर सकते हैं, ऐसा जो जीव मानता है, वह वीतराग की परंपरा से बाहर है।

श्री महावीर परमात्मा समस्त मोह-राग-द्वेष को जीतनेवाले हैं, अतः 'जिन' हैं और चैतन्य के पराक्रम से कर्मों के विजेता हैं, अतः 'वीर' हैं। वे श्री वर्द्धमान, सन्मति, अतिवीर और महावीर नामों से युक्त हैं। वे महावीर भगवान ही परम ऐश्वर्य अर्थात् केवलज्ञानादि को प्राप्त होने के कारण परमेश्वर हैं। इन्द्र और गणधरदेवों के भी देव होने के कारण देवाधिदेव हैं।

वे अंतिम 'तीर्थनाथ' हैं। तीर्थ अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। जो अपने आत्मा का भान करके तरने का उपाय अपने में प्रकट करे, वह 'तीर्थ' है और उसके नाथ महावीर भगवान हैं। स्वयं अपने में तरने का उपाय प्रकट करे तो निमित्तरूप में भगवान को 'तीर्थनाथ' कहा जाता है।

और भगवान सकल निर्मल ऐसे केवलज्ञान-दर्शन से संयुक्त हैं। केवलज्ञान-दर्शन कैसा है?-कि जो त्रिभुवन के सचराचर द्रव्य-गुण-पर्याय से कहे जानेवाले समस्त द्रव्यों को जानने-देखने में समर्थ हैं।

द्रव्य-गुण-पर्याय से समस्त पदार्थों का कथन किया जाता है। धर्म क्या है? द्रव्य है? गुण है या पर्याय है? इसका भी भान न हो और कहे कि हम धर्म करना चाहते हैं। धर्म तो कौन जाने कहाँ रहता होगा? शरीर में रहता होगा या आत्मा में? अभी तो ऐसी शंका में ही पड़ा है।

धर्म तो नवीन उत्पन्न होता है, अतः वह द्रव्य या गुण नहीं; वह तो पर्याय है। जिसकी जो पर्याय हो, उसी से वह पर्याय होती है। किसी की पर्याय पर के कारण नहीं होती। धर्म तो आत्मा की निर्दोष शुद्ध पर्याय है। वह आत्मा के आधार से होती है। द्रव्य त्रिकाल है, गुण त्रिकाल हैं और पर्याय क्षणिक है - वह नवीन उत्पन्न होती है। धर्म भी पर्याय है।

जगत में छह प्रकार के द्रव्य हैं। उनमें से जीव और पुद्गल को छोड़कर शेष चार द्रव्य तो अचर अर्थात् स्थिर हैं तथा जीव व पुद्गल यह दो द्रव्य सचराचर हैं। इनमें जीव का स्वभाव तो स्थिर रहने का है परंतु हलन-चलन की उसकी पर्याय की योग्यता है। इसप्रकार छहों द्रव्य स्व-स्व द्रव्य-गुण-पर्याय सहित हैं।

इस शरीर के द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतंत्र हैं तथा आत्मा के भी ये तीनों स्वतंत्र हैं। आत्मा अपने ज्ञान की पर्याय से जानता है, आँख से नहीं। इस शरीर में कहीं छिद्र नहीं है कि जिसमें से आत्मा देखे। जैसे वज्र की भीत हो, उसीप्रकार शरीर छिद्ररहित है। अंदर चैतन्यपिण्ड भिन्न है। वह अपने ज्ञानस्वभाव से जानता है। ध्रुव चैतन्यपिण्ड अपनी पर्याय से जानने का कार्य करता है, किंतु अज्ञानी को भ्रम है कि मुझे आँख से दिखता है। जैसे मकान में से खिड़की द्वारा बाहर देखते हैं, वैसे कहीं शरीर में आँख की खिड़की नहीं है, उसकी रचना तो छिद्ररहित है। चैतन्य निज गुण-पर्याय से स्वतंत्र है। उसके ध्रुवपिण्ड में ज्ञान के क्षयोपशमरूप छिद्र है, उसी के द्वारा यह जानता है।

छिद्र का अर्थ है पर्याय। छहों पदार्थ द्रव्य-गुण-पर्यायवाले हैं। सर्वज्ञ भगवान जगत के समस्त पदार्थों के ज्ञाता-दृष्टा हैं, किंतु उनमें कोई फेरफार करने में समर्थ नहीं हैं। उसी भाँति समस्त आत्माओं का स्वभाव जगत को जानने-देखने का है, परंतु उनमें किंचित् भी उलट-फेर करने की शक्ति उनमें नहीं है।

किसी जीव को मोक्ष प्राप्त करवा दें, ऐसी शक्ति भगवान में भी नहीं है। वे तो जैसा होता है, वैसा जानते हैं। यह जीव इसी भव से मुक्त होगा अथवा एक-दो भव बाद, ऐसा भगवान जानते हैं; परंतु किसी का काल आगे-पीछे करके मोक्ष में पहुँचा दे, ऐसी बात नहीं है।

भगवान तो मात्र निमित्त हैं। निमित्त क्या करे? गुरु उपदेश दे परंतु समझे उसे निमित्त कहा जाये न? स्वयं न समझे तो गुरु क्या करें? स्वयं समझने के बाद चैतन्य की महिमा आने पर विकल्प की दशा में देव-गुरु के बहुमान और विनय का भाव आता है, परन्तु वह किसी 'पर' के कारण नहीं आता। और निमित्त मेरा कल्याण कर देगा, ऐसी मान्यता भी नहीं है।

इसप्रकार प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, ऐसा केवलज्ञान से भगवान ने जाना है। ऐसे सर्वज्ञ को पहचानकर जो उन्हें नमस्कार करे, उसे अपने ज्ञानस्वभाव की प्रतीति होती है।

कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि मैं भगवान को नमस्कार करके कहता हूँ। .....क्या कहता हूँ? नियमसार कहता हूँ।

नियमसार का अर्थ क्या? 'नियम' शब्द प्रथम तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का द्योतक है। आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वही मोक्षमार्गरूप नियम है। जिसे मोक्ष में जाना हो, उसे ऐसा नियम लेना चाहिये।

लोग कहते हैं कि कुछ नियम बताओ। यहाँ 'नियम' बताया कि शुद्ध आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वही नियम है। इसमें भगवान के दर्शन करने का नियम आ जाता है। कैसे भगवान के? अपने चैतन्य परमेश्वर भगवान के दर्शन करना, वह सम्यग्दर्शन है। चैतन्य स्वभाव का सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र जिसने किया, उसने 'नियम' लिया।

बाहर में भगवान के दर्शन करना तो शुभभाव है, वह वास्तव में मोक्षमार्ग का नियम नहीं है। अंतर का नियम तो 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' ही है। आत्मा को नियम लेना चाहिये कि मुझे अपने आत्मा को विकारवाला नहीं मानना, मुझे विकार न खपै और ज्ञानानंदमय आत्मा खपै - ऐसा नियम, वह मोक्ष का मार्ग है। नियम अर्थात् रत्नत्रय। आत्मा ज्ञानानंदमय है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके उसमें रमणता करना ही नियम है। उस 'नियम' से मुक्ति हुए बिना रहे नहीं।

'नियम' अर्थात् रत्नत्रय, और 'नियम' के साथ 'सार' शब्द कहकर 'शुद्ध रत्नत्रय' का स्वरूप कहा है। शुद्ध रत्नत्रय अर्थात् रागरहित निर्विकल्प रत्नत्रय। देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान और पंचमहाव्रत का शुभभाव, वह तो अशुद्ध रत्नत्रय है। शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें रमणता होना शुद्ध रत्नत्रय है। शुद्ध रत्नत्रय कहो या निश्चय रत्नत्रय कहो, बीच में जो व्यवहार रत्नत्रय आता है, वह मलिन रागभाव है, अशुद्ध रत्नत्रय है।

शुभराग है, वह वास्तविक रत्नत्रय नहीं है, किंतु उपचार से उसे रत्नत्रय कहते हैं। वह वास्तव में मोक्षमार्ग नहीं है। 'शुद्ध रत्नत्रय' ऐसा कहकर यहाँ निश्चय रत्नत्रय बताया है, वही सच्चा मोक्षमार्ग है। शुभराग को व्यवहार रत्नत्रय कहा परंतु वह वास्तविक रत्नत्रय नहीं और मोक्ष का कारण भी नहीं।

जिसप्रकार नर्क का नाम 'रत्नप्रभा' है, उसीप्रकार व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र को रत्नत्रय कहा – परंतु उसका साधन तो अभव्य भी करता है, वह कहीं वास्तविक रत्नत्रय नहीं। 'नियमसार' अर्थात् शुद्ध रत्नत्रय; इसके अलावा शुभराग कहीं नियम का सार नहीं है। बीच में शुभराग का वर्णन आता है, वह ज्ञान करनेयोग्य है, किंतु आदरणीय तो शुद्ध रत्नत्रय ही है। इसप्रकार 'नियमसार' का अर्थ किया।

यह नियमसार कैसा है ? वह केवलियों और श्रुतकेवलियों द्वारा कहा हुआ है। ठेठ केवलीभगवान के साथ संधि करके कहा कि केवली और श्रुतकेवली का कहा हुआ 'नियमसार' मैं कहूँगा। केवली तो सकल प्रत्यक्षज्ञान के धारक हैं, ऐसे केवली ने इस शुद्ध रत्नत्रय को मोक्ष का मार्ग कहा है।

श्रुतकेवली भी सकल द्रव्यश्रुत के धारक हैं, ऐसे केवली और श्रुतकेवली ने जो कहा और स्वयं जिसका अनुभव किया, वही आचार्यदेव ने कहा है। पुनः यह नियमसार कैसा है ? सकल भव्यजनों के समूह को हितकारी है। यह नियमसार अर्थात् शुद्ध रत्नत्रय, वह सभी पात्र जीवों को कल्याणकारी है। व्यवहार रत्नत्रय वास्तव में जीव को हितकारी नहीं; राग तो बंध का कारण है, वह हितकर कैसे होगा ?

यह नियमसार परमागम है। इसमें कथित शुद्ध रत्नत्रय का स्वरूप सीधा सर्वज्ञ की वाणी की परंपरा से प्रवर्तन करता चला आया है और भावलिंगी संतों ने परंपरा से लिखा है। ऐसा नियमसार मैं कहता हूँ। इसप्रकार विशिष्ट इष्टदेव का स्तवन करके श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव नियमसार कहने की प्रतिज्ञा करते हैं। [क्रमशः]

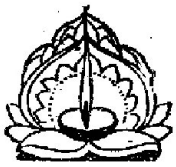

द्रव्यदृष्टि ही सम्यग्दृष्टि

वैशाख सुदी २ दिनांक २० अप्रेल १९७७ को पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का ८८वाँ जन्म दिवस है। उनके प्रवचनों में द्रव्यदृष्टि के महिमासूचक भाव व्यक्त होते रहते हैं।

द्रव्य का आशय शुद्धात्मद्रव्य से है। शुद्धात्मद्रव्य पर पड़ी दृष्टि को ही द्रव्यदृष्टि कहते हैं। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति निजशुद्धात्मद्रव्य पर दृष्टि केंद्रित होने पर ही होती है।

तत्त्वप्रेमीबंधु श्री महेशचंद्रजी, पिपलानी (भोपाल) ने द्रव्यदृष्टि संबंधी ८८ बोल स्वामीजी की वाणी में से संकलित करके भेजे हैं, जिनका संशोधन ब्रह्मचारी श्री चन्दूभाईजी ने किया है।

इस मंगल अवसर पर वे यहाँ प्रस्तुत हैं :-

१. द्रव्यदृष्टि अपूर्व मंगल है। दृष्टि जैसे ही त्रिकाल मंगल को स्वीकारती है, उसी समय सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धदशा तक की मंगल पर्यायों की पंक्ति प्रारंभ हो जाती है।

२. द्रव्यदृष्टि ही सम्यग्दृष्टि है।

३. द्रव्यदृष्टि में भव नहीं।

४. द्रव्यदृष्टि भव को स्वीकारती नहीं है।

५. द्रव्यदृष्टि जहाँ नहीं होती, वहाँ भव का बंधन हुए बिना नहीं रह सकता।

६. द्रव्यदृष्टि का जोर भवसंगति का छेद कर देता है।

७. द्रव्यदृष्टि भव को बिगड़ने नहीं देती।

८. द्रव्यदृष्टि होने के बाद कुछ अस्थिरता रह भी जाये और एक दो भव भी हो जायें तो भी वे भव बिगड़ते नहीं हैं।

९. द्रव्यदृष्टि होने के बाद जीव कदाचित् युद्ध में तत्पर हो, बाण के ऊपर बाण छोड़ रहा

हो, नील-कापोत लेश्या के अशुभभाव कभी-कभी आते भी हों; तो भी उस समय नये भव की आयु का बंध नहीं होता।

१०. द्रव्यदृष्टि होने के बाद नीचगति का बंध नहीं होता।

११. द्रव्यदृष्टिरहित जीव उग्र से उग्र तप करे और इतनी मंदकषाय करे कि उसके शरीर की चमड़ी उतारकर नमक छिड़क दिया जावे तो भी उफ न करे। इतना करके भी नौवें ग्रीवक तक ही जायेगा और फिर मिथ्यात्व के कारण परिभ्रमण करता हुआ क्रमशः एकेन्द्रियादि पर्यायें नियम से धारण करेगा।

१२. द्रव्यदृष्टि के आधीन ही ज्ञान-चारित्र से मोक्ष होता है।

१३. द्रव्यदृष्टि को जो कोई जीव एक बार भी धारण कर लेता है, उसे अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होती है।

१४. द्रव्यदृष्टि से युक्त जीव यदि देशव्रती से महाव्रती हो तो अधिक से अधिक पंद्रह भव में मोक्ष प्राप्त कर लेता है और यदि वह अविरती हो तो संख्यात भव में अवश्य मुक्तिलाभ करता है।

१५. द्रव्यदृष्टि के बाद यदि जीव उससे विरुद्ध आचरण भी करे, प्रबल से प्रबल मोह को धारण करे, तो भी अर्धपुद्गलपरावर्तन के अंदर उसे मोक्ष प्राप्त हो ही जाता है।

१६. द्रव्यदृष्टि के बिना जीव अनंतानंत उपाय करे तो भी संवर और मोक्ष नहीं पा सकता।

१७. द्रव्यदृष्टि के आधीन ज्ञान भी है।

१८. द्रव्यदृष्टिरहित ज्ञान मिथ्याज्ञान है और संसार का कारण है।

१९. द्रव्यदृष्टिसहित ज्ञान सम्यग्ज्ञान है और मोक्ष का कारण है।

२०. द्रव्यदृष्टि के बिना भले ही जीव ग्यारह अंग, नौ पूर्व का ज्ञान प्राप्त कर ले, तो भी वह सर्वज्ञान मिथ्या है।

२१. द्रव्यदृष्टि स्वद्रव्य के अलावा अन्य चेतन-अचेतन द्रव्यों का आश्रय नहीं करती।

२२. द्रव्यदृष्टि, परमार्थ से सच्चे देव-शास्त्र-गुरु भी निजशुद्धात्मद्रव्य से 'पर' होने के कारण उनका आश्रय नहीं करती।

२३. द्रव्यदृष्टि निजशुद्धात्मद्रव्यसामान्य से अतिरिक्त अन्य का – साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा का भी – आलंबन नहीं करती।

२४. द्रव्यदृष्टि को तीर्थंकर की दिव्यध्वनि का आश्रय भी स्वीकार नहीं है।

२५. द्रव्यदृष्टि निमित्त का आश्रय नहीं करती।

२६. द्रव्यदृष्टि मन–वचन–काया का आश्रय नहीं करती।

२७. द्रव्यदृष्टि, सहभावी प्रमाणज्ञान में द्रव्यपर्यायात्मक अखिल वस्तु का बोध होने पर भी केवल निजशुद्धात्मद्रव्यसामान्यरूप ध्रुवस्वभाव का ही आश्रय करती है; प्रमाण के विषयभूत पर्यायसम्मिलित द्रव्य का नहीं।

२८. द्रव्यदृष्टि–विभूषित ज्ञान से ही जीव और अजीव की भिन्नता का सम्यग्बोध होता है।

२९. द्रव्यदृष्टि इंद्रियों का आश्रय नहीं करती।

३०. द्रव्यदृष्टि सूक्ष्म विकल्प का आश्रय नहीं करती।

३१. द्रव्यदृष्टि कर्म काा आश्रय नहीं करती।

३२. द्रव्यदृष्टि परज्ञेय का आश्रय नहीं करती।

३३. द्रव्यदृष्टि सहवर्ती ज्ञान में परद्रव्य के अस्तित्व का बोध होने पर भी उसका आश्रय नहीं करती।

३४. द्रव्यदृष्टि राग, पर, और वर्तमान पर्याय का आश्रय नहीं करती।

३५. द्रव्यदृष्टि संयोग का आश्रय नहीं करती।

३६. द्रव्यदृष्टि संयोगीभाव का आश्रय नहीं करती।

३७. द्रव्यदृष्टि विकारी पर्यायों का आश्रय नहीं करती।

३८. द्रव्यदृष्टि अपूर्ण–पूर्ण शुद्ध निर्मल पर्यायों का आश्रय नहीं करती।

३९. द्रव्यदृष्टि एकसमय के शुभराग का भी आश्रय नहीं करती।

४०. द्रव्यदृष्टि एकसमय की निर्मल पर्याय का भी आश्रय नहीं करती।

४१. द्रव्यदृष्टि चौदह गुणस्थान के भेदों को भी परसंयोग से होने के कारण स्वीकार नहीं करती।

४२. द्रव्यदृष्टि नवतत्त्वों के विकल्प को भी स्वीकार नहीं करती।

४३. द्रव्यदृष्टि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अथवा द्रव्य-गुण-पर्याय - ऐसे तीन के विकल्प, गुण-गुणीरूप - ऐसे दो के विकल्प, तथा 'मैं ज्ञायक हूँ' - ऐसे एक के विकल्प को भी स्वीकार नहीं करती।

४४. द्रव्यदृष्टि भेद को स्वीकार नहीं करती।

४५. द्रव्यदृष्टि अभेद को ही स्वीकार करती है।

४६. द्रव्यदृष्टि भूतार्थस्वभाव का (निश्चयनय के आत्मा का) आश्रय करती है।

४७. द्रव्यदृष्टि अभूतार्थ (व्यवहार) का आश्रय नहीं करती।

४८. द्रव्यदृष्टि परसंबंधी भावों का आश्रय नहीं करती।

४९. द्रव्यदृष्टि औदयिकभावों का (समस्त शुभ-अशुभभावों का) आश्रय नहीं करती।

५०. द्रव्यदृष्टि औपशमिकभावों (उपशम सम्यक्त्व आदि) का आश्रय नहीं करती।

५१. द्रव्यदृष्टि क्षायोपशमिकभावों (अपूर्ण-ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि की पर्यायों) का आश्रय नहीं करती।

५२. द्रव्यदृष्टिसहित ज्ञान, चारित्र, वीर्य और तप में सम्यक्पना होता है।

५३. द्रव्यदृष्टिरहित ज्ञान, चारित्र, वीर्य और तप में मिथ्यापना होता है।

५४. द्रव्यदृष्टि होने पर ही व्रत, तप, दान, पूजा, भक्ति आदि शुभभाव व्यवहार मोक्षमार्ग को प्राप्त होते हैं।

५५. द्रव्यदृष्टिरहित व्रत, तप, दान, पूजा, भक्ति आदि शुभभाव बिना इकाई के अनेक शून्यों के समान हैं।

५६. द्रव्यदृष्टिरहित जीव के उत्कृष्ट से उत्कृष्ट व्रत को भगवान ने बालव्रत की संज्ञा दी है।

५७. द्रव्यदृष्टिरहित उग्र से उग्र शुभभाव और भारी मंदकषाय भी भव की थकान नहीं उतार सकते।

५८. द्रव्यदृष्टि के बिना जीव अनादि काल से निगोद से लगाकर नवमें ग्रीवक तक के अनंत भवों को धारण करके भावमरण करता रहा, लेकिन संसारचक्र का अंत नहीं आया।

५९. द्रव्यदृष्टि के अपूर्व पुरुषार्थ बिना क्रमबद्धपर्याय की या केवलज्ञान की प्रतीति नहीं होती।

६०. द्रव्यदृष्टि के बिना पूर्णता की प्राप्ति नहीं होती।

६१. द्रव्यदृष्टि में भय, आकुलता और दुःख नहीं।

६२. द्रव्यदृष्टि शुद्धपर्यायसहित ध्रुव का – प्रमाण का आश्रय नहीं करती।

६३. द्रव्यदृष्टि में आस्रव, बंध और पुण्य-पाप नहीं।

६४. द्रव्यदृष्टि ही संवर, निर्जरा और मोक्ष का मूल कारण है।

६५. द्रव्यदृष्टि होते ही (चौथे गुणस्थान से ही) भव की बेल मुरझाना शुरु हो जाती है।

६६. द्रव्यदृष्टि ही क्रम से निर्मल पर्यायों की जननी है, क्योंकि दृष्टि ने ज्यों ही ध्रुवस्वभाव की शरण ली कि निर्मल पर्यायों का झरना झरने लगता है। उन निर्मल पर्यायों का स्रोत (आधार) ध्रुवस्वभावी आत्मा है।

६७. द्रव्यदृष्टि स्व के वैभव की ओर ही आकर्षित होती है। वह जगत के वैभव की ओर आकर्षित नहीं होती।

६८. द्रव्यदृष्टिवंत को ही बीच में ऐसे उत्कृष्ट पुण्य का बंध होता है कि तीर्थंकर जैसा महान पद प्राप्त होता है।

६९. द्रव्यदृष्टि से ही श्रावकदशा, मुनिदशा, अरिहंतदशा और सिद्धदशा प्रकट होती है।

७०. द्रव्यदृष्टि से ही प्लावित ज्ञान-संयम समस्त विकार को (शुभ-अशुभ भावों को) नाश करनेवाली परम औषधि है।

७१. द्रव्यदृष्टि ही निश्चयसम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का कारण है।

७२. द्रव्यदृष्टि ही स्वयंभू होने का प्राथमिक उपाय है।

७३. द्रव्यदृष्टि से समन्वित ज्ञान में ही स्व और पर का सच्चा भेद-विज्ञान होता है।

७४. द्रव्यदृष्टि ही सकल कर्म से रहित दशा प्राप्त करने का प्रथम सोपान है।

७५. द्रव्यदृष्टि का फल ज्ञान-चारित्रपूर्वक केवलज्ञान है। पर्यायदृष्टि का फल निगोद है।

७६. द्रव्यदृष्टि को आलंबनरूप से केवल स्वद्रव्यसामान्यरूप चैतन्य सत्ता ही स्वीकार्य है।

७७. द्रव्यदृष्टि 'पर' की सत्ता का आश्रय नहीं करती।

७८. द्रव्यदृष्टि कहती है कि मैं मात्र चैतन्यमूर्ति भगवान को स्वीकार करती हूँ।

७९. द्रव्यदृष्टि कहती है कि मैं जीव को मानती हूँ, परंतु उस जीव को जो परसंयोग, परभाव एवं अपूर्ण-पूर्ण पर्यायों से रहित हो; केवल निजध्रुवशुद्धात्माद्रव्यसामान्य हो।

८०. द्रव्यदृष्टि त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का आश्रय करती है।

८१. द्रव्यदृष्टि एकसमय में परिपूर्ण द्रव्य को ही स्वीकार करती है।

८२. द्रव्यदृष्टि में शुद्ध आत्मा ही ध्रुव है, अन्य किंचित्मात्र भी ध्रुव नहीं।

८३. द्रव्यदृष्टि एकसमय की पर्याय बिना का ध्रुवस्वभावी आत्मा स्वीकार करती है।

८४. द्रव्यदृष्टि एकमात्र परमपारिणामिकभाव का आश्रय स्वीकार करती है।

८५. द्रव्यदृष्टि का विषय त्रैकालिक निज आत्मा है।

८६. द्रव्यदृष्टि का विषय सूक्ष्म है, किंतु श्रद्धा में आ जाता है।

८७. द्रव्यदृष्टि ही परम कर्तव्य है।

८८. द्रव्यदृष्टि ही चारित्रवृक्ष की जड़ है, जिससे शाश्वत् परमानंददायी मोक्ष फलता है।

द्रव्यदृष्टि की ऐसी ही महिमा जानकर प्रत्येक जीव को उसी की भावना भाना चाहिए।

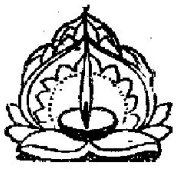

न ज्ञान न दर्शन न चारित्र

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की सातवीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है :-

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाण गो सुद्धो ॥७॥

ज्ञानी को चारित्र, दर्शन, ज्ञान यह तीन भाव व्यवहार से कहे जाते हैं। निश्चय से ज्ञान भी नहीं है, चारित्र भी नहीं है, और दर्शन भी नहीं है; ज्ञानी तो एक शुद्ध ज्ञायक ही है।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र को आत्मा का धर्म कहा गया है तो यह तो गुण-भेद हुआ। इसप्रकार भेदरूप भावों से आत्मा को अशुद्धता आती है ? इस प्रश्न का उत्तर समयसार की इस गाथा द्वारा समझाया गया है।

इस ज्ञायक आत्मा को विभावरूप अशुद्धता तो दूर रहो, परंतु उसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र—ऐसे भेद भी नहीं हैं। अभेद ज्ञायकभाव में भेद का अस्तित्व ही नहीं। सम्यग्दर्शन के विषयभूत एकरूप अभेद ज्ञायकभाव में दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ऐसे भेद विद्यमान नहीं।

कोई कहे कि अपने आत्मा में से दर्शन-ज्ञान-चारित्र निकाल दिये, तब मात्र बातों का ही धर्म रहा ? तो उससे कहते हैं कि तुम अपेक्षा नहीं समझे, यह तो मोक्ष प्राप्त करने की समझ है। प्रथम ही पूर्ण ज्ञायकस्वरूप निर्विकल्प है, उसकी वास्तविक श्रद्धा करके गुण-भेद का निषेध किया गया है।

जो निश्चय-व्यवहार का मर्म नहीं जानते, वे इस सातवीं गाथा का विपरीत अर्थ करते हैं। भाई ! बात यह है कि जैसे - सोने को अन्य पदार्थों से भिन्न बताने के लिये उसके गुण-भेद से बताया जाता है, तो भी उसमें भेद नहीं है। उसीप्रकार आत्मा का पर से भिन्न पूर्ण स्वरूप दिखाने के लिये अनंत धर्मों में से कुछ धर्मों द्वारा समझाया जाता है कि श्रद्धा करे, स्व-पर को

जाने, अंतरस्थिरतारूप चारित्र हो; वह आत्मा। ये तीनों गुण आत्मा में एक साथ प्रतिसमय अभेद हैं; परंतु जो अज्ञानी समझता नहीं, उसे एक-एक गुण भिन्न-भिन्न कहकर समझाना व्यवहार है।

एक-एक गुण को भिन्न करके उस पर लक्ष्य करें, तो मन के संबंध से विकल्प होने पर निर्विकल्पस्वरूप अभेद आत्मा में स्थिर नहीं हो सकते। भिन्न-भिन्न गुणों का लक्ष्य छोड़कर निर्मल अखंड तत्त्व पर लक्ष्य करने से दर्शन-ज्ञान-चारित्र के विकल्परूप राग उत्पन्न नहीं होता। 'मैं स्वरूप में स्थिर होऊँ'—ऐसी वृत्ति भी शुभराग है। अखंड-अभेद वस्तु में एकत्व की अनुभूति के समय दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भेद उत्पन्न करनेवाले विकल्प विद्यमान नहीं होते। सम्यग्दर्शन का विषय अभेद है और वहाँ निर्विकल्प अनुभवदशा है।

जो अभेदस्वरूप में दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भेद करके विकल्पों में रुका रहे, उसे अनंत गुणों का अभेद पिण्ड आत्मा का निर्विकल्प लक्ष्य नहीं होगा और ऐसा लक्ष्य हुए बिना निर्मल श्रद्धा नहीं हो सकेगी। जिसे निर्विकल्प अभेद की श्रद्धा नहीं है, उसे यह चतुर्थ गुणस्थान प्रगट करने की बात कहते हैं।

जैसे, माल तोलते समय तराजू-बाट की जरूरत पड़ती है, परंतु खाते समय तो वे दूर पड़े रहते हैं; उसीप्रकार आत्मा का निश्चय करने के बाद एकाग्र अनुभूति के समय दर्शन-ज्ञान-चारित्र के विकल्प नहीं होते।

प्रथम, आत्मा की श्रद्धा के समय ऐसी एकाग्रता होने पर निर्विकल्प अनुभव होता है, और आगे बढ़ने पर विशेष चारित्रदशा में भी इसीप्रकार निर्विकल्प अनुभूति ही होती है। भेद पड़े तो विकल्प अवश्य होगा। यह समझे बिना कोई एकांत में जाकर बैठ जाये तो इतने मात्र से उसे आत्मानुभव नहीं हो जायेगा। प्रथम सत्य-असत्य का निर्णय होने के बाद अनुभव होता है।

एक आत्मा में दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद का विचार करने पर क्रम पड़ता है और उसमें मन की अपेक्षा आती है। ऐसे भेद द्वारा एकाकार गुण-दृष्टि का अनुभव नहीं होता और अंतर में अभेद एकाग्रता नहीं होती।

इस गाथा में अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय की बात आयी है और उसका निषेध किया गया है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र ये तीन भेद जो व्यवहारनय से कहे जाते हैं, सम्यग्दर्शन के

विषय नहीं। भेद तो विकल्प का कारण है, धर्म का कारण नहीं। भेद करके विचार करने पर चित्त का संग होता है। आत्मा असंगस्वरूप है, उसमें चित्त का संग भी नहीं; अत: चित्त का संग छोड़ने से सम्यग्दर्शन होता है।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र का भेद अपनी पर्याय में है, परंतु वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। सम्यग्दर्शन अभेद को स्वीकार करता है, भेद को नहीं। ज्ञान-दर्शन-चारित्रगुण हैं और आत्मा गुणी है, ऐसा भेद करना राग का कार्य है। चैतन्यस्वरूपी अभेद आत्मा में भेद नहीं।

सम्यग्दर्शन अर्थात् निर्विकल्प प्रतीति अभेद ज्ञायक है - यह मर्म न समझकर अज्ञानी उलटा प्रश्न करते हैं कि 'ज्ञानी को ज्ञान-दर्शन-चारित्र नहीं तो क्या अज्ञानी को है ? या जड़ को है ?' इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि मुनिराज को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों पर्यायें प्रगट हैं, परंतु सम्यग्दर्शन के विषयभूत आत्मा में तीन भेद नहीं। ऐसे अभेद आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होते हैं।

आचार्यदेव को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होते हुए भी कहते हैं कि ज्ञानी को चारित्र नहीं है। किस अपेक्षा से ? कि आत्मा तथा चारित्र ऐसा भेद करना सम्यग्दर्शन का ध्येय नहीं है। और सम्यग्दृष्टि को दर्शन नहीं, ऐसा कहने का आशय यह है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शनपर्याय को स्वीकार नहीं करता। वह तो अखंड, अभेद, परिपूर्ण आत्मा को स्वीकार करता है। यही क्रमबद्धपर्याय का निर्णय है। 'जिस समय जो होना है, वही होगा' ऐसा माननेवाले की दृष्टि ज्ञायकस्वभाव पर रहती है। शुद्ध ज्ञायकस्वभावी आत्मा ही सम्यग्दर्शन का विषय है। मुनिराज को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, २८ मूलगुण का पालन भी है; परंतु उन सबका निषेध करके अखंड, गुणी आत्मा की दृष्टि करना ही धर्म है।

शिष्य भेद को ही जानता है, परंतु अनंत धर्मों के धारक एकधर्मी में निष्णात नहीं है। अत: नाम से भेद उत्पन्न करके व्यवहार से समझाते हैं कि ज्ञान वह आत्मा, दर्शन वह आत्मा, चारित्र वह आत्मा।

कुछ लोग कहते हैं कि समयसार मुनियों के लिये है। जबकि यहाँ कहते हैं कि सुनने और समझने के लिये निकटवर्ती शिष्य जो ज्ञायकभाव में निष्णात नहीं हुआ, ऐसे शिष्य को समझाया जाता है। जिसे भावभासन नहीं हुआ, ऐसे निकटवर्ती शिष्य को समझाया जाता है।

निकटवर्ती से आशय – समीप में रहनेवाले शिष्य से है। क्षेत्र की निकटता भी है और भाव की निकटता भी है, अर्थात् गुरु का आशय समझने में तत्पर शिष्य को समझाया जाता है।

ज्ञायकभाव में अनंत गुण हैं। ज्ञायकभाव और अनंत गुण वस्तुरूप से अभेद हैं। उसमें ज्ञान और आत्मा, ऐसा भेद करके देखने से दृष्टि में ज्ञायकभाव नहीं आता, क्योंकि ज्ञायकभाव में भेद नहीं है। अत: भेद से देखने पर ज्ञायकभाव दृष्टि में नहीं आता; भेद से देखने पर विकल्प उठता है, राग होता है। दृष्टि के विषय में किसी प्रकार का भेद नहीं; मात्र अभेद ज्ञायकभाव ही सम्यग्दर्शन का आशय है।

जिसे अभेद ज्ञायकभाव समझना है, उसे समझाने के लिये नाम से भेद उपजाकर, ज्ञान वह आत्मा, ऐसा अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा है। परंतु परमार्थ से देखा जाये तो अनंत पर्यायों अर्थात् सहवर्ती गुणों को एक द्रव्य पी गया होने से; अर्थात् ज्ञायकद्रव्य भेदरहित अनंत गुणों के साथ अभेद एक – ऐसा कुछ मिले हुए स्वादवाला एकस्वभावी होने से – उसका अनुभव करनेवाले ज्ञानी को ज्ञान भी नहीं, दर्शन भी नहीं, चारित्र भी नहीं; वह तो एक शुद्ध ज्ञायक ही है।

इसप्रकार छठवीं गाथा में शुद्ध निश्चयनय के विषयभूत त्रिकाली ध्रुव ज्ञायकभाव में उपचरित और अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का विषय तथा उपचरित सद्भूत व्यवहारनय का निषेध करके अब यहाँ अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय का निषेध किया गया है।

यहाँ कोई प्रश्न करे कि पर्याय भी तो द्रव्य का ही भेद है, अवस्तु तो नहीं? फिर उसे व्यवहार क्यों कहा जाता है? पर्याय, शरीरादि के समान परवस्तु भी नहीं है; द्रव्य और पर्याय स्ववस्तु ही है, फिर पर्याय के भेद को व्यवहार क्यों कहा जाता है?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि भाई! यह बात सही है कि पर्याय परवस्तु का भेद नहीं, स्ववस्तु का ही भेद है; परंतु अनादि की पर्यायदृष्टि छुड़ाकर द्रव्यदृष्टि कराने को अभेद की मुख्यता से यहाँ उपदेश दिया गया है। जीव अनादि से भेद में ही रुका है और भेद की मुख्यता करने से रागी जीव को राग ही होता है, अत: भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद का लक्ष्य कराते हैं। दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद को गौण करने से ही अनंत गुणों का पिण्ड अभेद आत्मा भली प्रकार समझा जा सकता है।

सरागी को भेददृष्टि में निर्विकल्पता नहीं, राग ही होता है। रागी जीव गुण और गुणी के भेद का लक्ष्य करेगा तो राग ही होगा, निर्विकल्पता नहीं। एक वस्तु में अनंत गुण है, परंतु अभेदरूप हैं; अतः गुण-भेद करने से अभेद निर्विकल्प दृष्टि नहीं होती।

देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा से तो सम्यग्दर्शन होना दूर, परंतु ज्ञान-दर्शन आदि अनंत गुणों से अभेद आत्मा में गुण-भेद करके दृष्टि करने से भी सम्यग्दर्शन नहीं, राग ही होता है। भेददृष्टि तो पर्याय है और उसका लक्ष्य आत्मा और उसके गुण - ऐसा भेद होने से राग होता है। अभेददृष्टि भी पर्याय है, परंतु उसका विषय गुण-गुणी भेद से रहित अभेद आत्मा है - जिसे लक्ष्य में लेने से सम्यग्दर्शन और निर्विकल्प स्वानुभव होता है।

भेद को जानने से राग होता है, यह नियम सभी पर लागू नहीं होता। केवली परमात्मा लोकालोक और सकलभेद को जानते हैं, परंतु अरागी होने से उन्हें राग नहीं होता। जब तक स्वयं सरागी है, तब तक भेद का लक्ष्य करके जानेगा तो राग ही होगा, ऐसा नियम है। अतः जब सरागी गुण-गुणी के भेद का लक्ष्य छोड़कर मात्र अभेद ज्ञायकभाव का लक्ष्य करेगा, तभी उसे निर्विकल्प दशा प्रगट होगी।

वीतराग होने के बाद भेदाभेदरूप वस्तु का ज्ञाता रहता है। अतः जब तक रागादि मिटे नहीं, तब तक भेद को गौण करके मात्र अभेद ज्ञायकस्वभाव को दृष्टि में लेने से निर्विकल्प अनुभव होता है। अतः यहाँ भेद को गौण करके व्यवहार कहा है।

कोई कहे कि सर्वथा अद्वैत ही है। आत्मा में गुण-भेद, पर्याय-विकार है ही नहीं तो वह अज्ञानी है। निमित्त, विकार, कर्म, भेद, सब कुछ हैं, परंतु उनका लक्ष्य छोड़ने से वीतराग दशा प्रगट होती है और वीतराग होने के पश्चात् आत्मा वस्तुरूप से अभेद है और गुण पर्यायों से भेदरूप हैं - इस प्रकार दोनों की वास्तविकता ज्ञात होती है अर्थात् भेदाभेद वस्तु का ज्ञाता हो जाता है। तब नय का अवलंबन नहीं रहता। केवलज्ञान में नय नहीं है। अखंड प्रमाण होने के पश्चात् वहाँ भेद नहीं पड़ता।

जैसे राजा को उनके योग्य आदर से न बुलायें तो वे उत्तर नहीं देते; उसीप्रकार भगवान आत्मा को सर्वज्ञ के न्याय अनुसार जानकर, अनंत गुणों से एकत्व पहिचानकर,

उसका अभेदरूप से लक्ष्य न करें, तो वह भी उत्तर नहीं देता। अर्थात् साक्षात् निर्विकल्प अनुभूति नहीं होती।

यहाँ कोई कहे कि निचली दशा में राग तो रहता है, तो रागरहित दशा कैसे ज्ञात होगी? उसके उत्तर में कहते हैं कि सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञात होगी। जब तक मन का अवलंबन है, तब तक बुद्धिपूर्वक राग रहता है। उसका लक्ष्य छोड़ स्व में अभेद लक्ष्य होने पर बुद्धिपूर्वक राग छूट जाता है और निर्विकल्प अरागदशा प्रगट होती है। यह सम्यग्दर्शन हो, ऐसा आत्म-साक्षात्कार प्रथम चौथे गुणस्थान में गृहस्थ को होता है। राग होते हुए भी आत्मा में आनंद का स्वाद आता है। अल्पज्ञदशा में वर्तते ज्ञान के स्थूल व्यापार को सूक्ष्म करके स्व तरफ झुकाकर निर्मल अभेदस्वरूप का लक्ष्य करने से बुद्धिपूर्वक विकल्प छूट जाते हैं। ऐसी अचिंत्य महिमावंतदशा गृहस्थ्दशा में हो सकती है और वह जन्म-मरण दूर करने का उपाय है।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

अब तीन गाथाओं में जीव के उपयोग का वर्णन करते हैं। उसमें पहली गाथा (गाथा नं० ४) में दर्शनोपयोग का प्रमुखतया वर्णन किया है। गाथा इसप्रकार है :-

उवयोगो दुवियप्पो, दंसण णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खू अचक्खू ओही, दंसणमध केवलं णेयं॥४॥

जीव का उपयोग स्वभाव है। वह उपयोग दर्शन और ज्ञान ऐसे दो प्रकार का है। उसमें चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन - इस तरह चार प्रकार का दर्शनोपयोग

है। दर्शनोपयोग स्वभाव है, वह तो त्रिकाल है; और ये चार उसकी पर्यायें हैं। उनमें चक्षु, अचक्षु और अवधि छद्मस्थ के होता है और केवलदर्शन सर्वज्ञ परमात्मा के होता है।

चक्षु के निमित्त से पदार्थों के रूप वगैरह जानना, इसका नाम कोई चक्षुदर्शन नहीं है। लेकिन रूप वगैरह को जानने से पहिले उपयोग का एक सामान्य व्यापार (मात्र सत्तावलोकन) होता है, उसका नाम चक्षुदर्शन है। यह दर्शनोपयोग निर्विकल्प है। निर्विकल्प, इसका क्या मतलब ? कि पदार्थों में विशेष भेद किये बिना दर्शनोपयोग उनका सामान्य प्रतिभास करता है, इससे वह निर्विकल्प है। और ज्ञानोपयोग तो स्व-पर, जीव-अजीव, सामान्य-विशेष वगैरह सभी भेदोंसहित पदार्थों को जाननेवाला स्वभाव है, इसलिये वह सविकल्प कहा जाता है। विकल्प का अर्थ रागरूप नहीं समझना। ज्ञान विशेष प्रकार से जानता है, इसलिये सविकल्प है। केवलज्ञान भी सविकल्प है। देखिये ! उपयोग के जितने भेद हैं, वे सब जीव की सत्ता में हैं। वे कोई पर के कारण से नहीं हैं।

देखिये ! जीव का स्वभाव ही ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग है। अर्थात् पूर्णता प्राप्त करे, उस दशा में एक साथ केवलज्ञान और केवलदर्शन दोनों होते हैं। ऐसे पूर्ण ज्ञानोपयोग और पूर्ण दर्शनोपयोगसहित जीव की सत्ता है। जो इसको न माने तो उसने जीव की सत्ता को नहीं जाना। कोई ऐसा कहे कि सर्वज्ञ परमात्मा को केवलज्ञान और केवलदर्शन दोनों एक साथ नहीं होते, लेकिन क्रमशः होते हैं, तो उसने जीव की सत्ता को ही यथार्थरूप से नहीं जाना। छद्मस्थ अवस्था में ज्ञानोपयोग के समय दर्शनोपयोग नहीं होता और दर्शनोपयोग के समय ज्ञानोपयोग नहीं होता, लेकिन क्रमशः उपयोग होता है। पूर्ण दशा में ज्ञानदर्शन का क्रम ऐसा नहीं होता। वहाँ तो ज्ञान और दर्शन दोनों उपयोग एक साथ होते हैं। जो इससे विपरीत मानता है तो उसने जीव की शुद्ध सत्ता को तथा केवलज्ञान की दशा (अवस्था) को भी नहीं जाना।

तीन काल तथा तीन लोक में समस्त द्रव्यों को सामान्यरूप से देखनेवाला जो पूर्ण निर्मल केवलदर्शन है, वही जीव का स्वभाव है। ऐसा स्वभाव-सामर्थ्य जीव में त्रिकाल है, लेकिन पर्याय में वह पूर्ण सामर्थ्य अनादि से प्रगट नहीं है।

पर्याय में अनादि कर्मबंध के आधीन होने से, कर्म के क्षयोपशम के निमित्त से, तथा इंद्रियों के अवलंबन से मूर्त पदार्थों की सामान्य सत्ता को भेदरहित देखना, वह चक्षुदर्शन है।

देखिये! चक्षुदर्शन कहा, तब भी वह चक्षु से नहीं होता। शिष्य 'धवल' में प्रश्न करता है कि – प्रभो! चक्षुदर्शन कहा है, तब भी आँख से दिखता है – उसका ऐसा अर्थ न करते हुए, गाथा का गला मसक कर (घोटकर) अर्थ क्यों करते हो? तब श्री गुरु समाधान करते हैं कि भाई! गाथा के शब्दों का भी यही आशय है। हमने गाथा के आशय अनुसार ही अर्थ किया है। दर्शनोपयोग को पहिचानने के लिये चक्षु के निमित्त से कथन किया है, लेकिन चक्षु से मूर्त पदार्थ को देखना, यह तो ज्ञान हो गया। उस ज्ञान के होने से पहिले उपयोग का जो सामान्य व्यापार (सत्तावलोकन) हो जाता है, उसका नाम चक्षुदर्शनोपयोग है। ऐसा उपयोग जीव की स्वयं की पर्याय में है।

यहाँ चक्षुदर्शन के उपयोग को भी 'संव्यवहार प्रत्यक्ष' कहा। जैसे ज्ञान में प्रत्यक्ष परोक्ष ऐसे भेद आते हैं, वैसे यहाँ दर्शन में भी प्रत्यक्ष परोक्ष का आरोप कहा है। जैसा ज्ञान होता है, वैसा ही दर्शनोपयोग भले हो – यहाँ ऐसा कहा है। दर्शनोपयोग सर्वथा निमित्त के बिना परिपूर्ण कार्य करता हो तो केवलदर्शन है, और चक्षुदर्शन तो यथार्थ में परोक्ष है, किंतु ज्ञान संव्यवहार प्रत्यक्ष होता है। इसलिये आरोप से उसके पूर्व के (आद्य पर्याय) चक्षुदर्शन को भी संव्यवहार प्रत्यक्ष कह दिया है। छद्मस्थ जीव इस दर्शनोपयोग को सीधा नहीं पकड़ सकता, लेकिन प्रतीत में ले सकता है। 'यह दर्शन है' ऐसा लक्ष्य करे (लक्ष्य में लेने जाये) तो उस समय दर्शनोपयोग नहीं रहता लेकिन ज्ञानोपयोग हो जाता है। ऐसा उपयोग स्वभाव जीव में त्रिकाल है। ऐसे जीव स्वभाव को जानकर उसका आदर करना, यह धर्म है।

यथार्थ चैतन्यस्वभाव और उसकी प्रतिसमय की स्वतंत्र पर्याय जिसके जानने में न आये, उसको अंतर्दृष्टि होकर सम्यग्दर्शन नहीं होता।

यहाँ जीव के उपयोग का वर्णन है। जीव में उपयोग और दर्शनोपयोग त्रिकाल हैं। उनकी प्रति समय की स्वतंत्र पर्याय होती है। दर्शनोपयोग की पर्याय के चार भेद हैं। चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल। ये चारों दर्शनोपयोग जीव की सत्ता में होते हैं। चक्षु निमित्त है और जीव में चक्षुदर्शनोपयोग क्षयोपशम है। उस दर्शनोपयोग की पर्याय स्वतंत्र है, और उस पर्याय का कार्य चक्षुइंद्रिय के विषयभूत पदार्थों को सामान्य रूप से निर्विकल्प रूप से देखना है। चक्षुदर्शनोपयोग पर्याय है, वह स्वतंत्र है। वह अंशरूप से देखता है, परोक्ष देखता है, और

निर्विकल्प देखता है। 'इस रूप है', ऐसा भेद किया तो वह ज्ञान हो गया। दर्शनोपयोग वैसा भेद नहीं करता।

द्रव्य-गुण-पर्याय इन सबको जैसे हैं, वैसे जाने तब यथार्थ ज्ञान होता है। इस यथार्थ ज्ञान के बगैर धर्म नहीं होता।

आत्मा अनंत वस्तु (द्रव्य) है, उसमें दर्शनोपयोग नाम का गुण है, उसकी चार पर्यायें हैं। उनमें चक्षुदर्शन मूर्त पदार्थों की सत्ता को परोक्ष देखता है। वह चक्षुदर्शनोपयोग पूर्ण रूप से नहीं देखता, किंतु आंशिक (अंशरूप में) देखता है। वह दर्शन, भेद करके (भेदरूप से) नहीं देखता, किंतु स्वयं के विषय को निर्विकल्परूप से (बगैर भेद किये) देखता है। यहाँ चक्षुइंद्रिय निमित्त होती है और उसप्रकार से कर्म का क्षयोपशम निमित्त होता है। देखने का कार्य तो दर्शनोपयोग स्वतंत्ररूप से करता है। यह दर्शनोपयोग भी एक अंश है। जीव त्रिकाली शुद्ध है वह अंश (आंशिक) जितना नहीं है। ऐसा सब जानकर शुद्ध जीव को उपादेय माने तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है। ऐसी बात (इस रूप का कथन) जैन दर्शन के अतिरिक्त दूसरी जगह (अन्य दर्शनों में) नहीं पायी जाती।

अचक्षुदर्शन है – उसमें स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्र इंद्रिय के आवरण का क्षयोपशम तथा बाह्य इंद्रियाँ – ये निमित्तरूप हैं और वहाँ दर्शनोपयोग का इसप्रकार उघाड़ (आवरण का आंशिक हटना) है। वह अचक्षुदर्शन मूर्त पदार्थों की सामान्य सत्ता को अभेदरूप विकल्प रहित देखता है तथा परोक्ष देखता है। शब्द लक्ष्य में आ गया, वह तो ज्ञान हो गया, किंतु शब्द लक्ष्य में न आये, उसके पहिले दर्शनोपयोग का सामान्य व्यापार (प्रवृत्ति) हो जाता है, इसका नाम अचक्षुदर्शन है। यह जीव की स्वयं की पर्याय है, वह दूसरे के लिये (अन्य द्रव्य) नहीं है। यह अचक्षुदर्शन भी परोक्ष है। परोक्ष ज्ञान है, यहाँ उसके पहिले के दर्शन को भी परोक्ष कहा है। प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो भेद दर्शन में (दर्शनोपयोग) यहाँ लिये हैं। लेकिन 'परोक्ष प्रमाण और प्रत्यक्ष प्रमाण' ऐसे दो भेद तो ज्ञान में ही हैं। दर्शन में प्रमाण लागू नहीं होता। दर्शन की प्रति समय की पर्याय जीव के साथ अभेद है, क्योंकि जीव उपयोगमय है।

देखिये! यह अचक्षुदर्शन में कितनी बातें अन्तर्निहित हैं। १. जीव का दर्शनस्वभाव त्रिकाल है। २. अचक्षुदर्शनोपयोग उसकी पर्याय है। ३. वह पर्याय परोक्ष है। ४. एक मूर्त को ही

देखता है।५. स्वतंत्रतापूर्वक देखता है।६. एक अंश को ही देखता है।७. इंद्रिय तथा कर्म का क्षयोपशम उसमें निमित्त है। ८. वह सामान्य सत्ता को ही देखता है। ९. भेद किये बगैर निर्विकल्प होता है।१०. ऐसी दर्शनपर्याय जीव से अभिन्न है।११. अचक्षुदर्शन वह एक अंश है।एक अचक्षुदर्शन की पर्याय को पहचानने में (उपरोक्त) इतनी बातें जानना चाहिये।

उपरोक्त जो बात की, वह इंद्रियों के निमित्त से होनेवाले अचक्षुदर्शन की बात की। लेकिन मन के निमित्त से भी अचक्षुदर्शन होता है।वह अमूर्त पदार्थों को भी देखता है।मूर्त और अमूर्त ऐसे दो भेद करना, यह तो ज्ञान का कार्य है।दर्शन में वैसे भेद नहीं होते।

अवधिदर्शन – अवधिज्ञान एकअंशरूप से प्रत्यक्ष जाननेवाला है।ज्ञान होने से पहिले अंदर अवधिदर्शन का उपयोग होता है। यह अवधिदर्शन भी एकदेश प्रत्यक्ष है। देखो, स्वर्ग और नरक को यहाँ स्वयं के उपयोग से देखता है। अवधिदर्शन मूर्त पदार्थों की सामान्य सत्ता को एकदेश प्रत्यक्ष निर्विकल्परूप से देखता है।

केवलदर्शन – केवलदर्शन का वर्णन करते समय पहिले यह कैसे होता है ? यह कहते हैं। सहज शुद्ध सदा आनंदरूप एकस्वरूप का धारक परमात्मा है। तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के बल से, उसका (जीव का) केवलदर्शनावरणी कर्म का क्षय होकर केवलदर्शन प्रगट होता है। वह केवलदर्शन कैसा है ? कि समस्त मूर्त-अमूर्त सभी पदार्थों की सामान्य सत्ता को जो संपूर्ण प्रत्यक्षरूप से एक समय में विकल्प रहित देखता है। चार प्रकार के दर्शनोपयोग में ऐसा केवलदर्शन उपादेय है। वह पर्याय अपेक्षा से उपादेय है। लेकिन ऐसा केवलदर्शन किसको होता है ? कि निचय से उपादेयरूप शुद्ध चिदानंद चैतन्य परमात्मा को ही पहिचानकर उसकी भावना करे तो केवलदर्शन प्रगट होता है। देखिये ! यह उपादेय तत्त्व की बात है। ऐसे तत्त्व को जाने बिना धर्म नहीं होता।

आत्मा सदा आनंदस्वरूप एकरूप है; बंध और मोक्ष ऐसे भेद पर्याय में होते हैं। लेकिन त्रिकाली तत्त्व की दृष्टि में ऐसे भेद नहीं हैं, वह तो एकरूप सदा आनंदरूप है। दु:ख, मोक्षमार्ग और मोक्ष ये सब तो क्षणिक पर्याय में हैं, और ध्रुव चिदानंद परमात्मा तो सदा एकरूप है। ऐसे सदा आनंदस्वरूप एकरूप परमात्मा के तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के बल से केवलदर्शन होता है।

द्रव्य-पर्याय को जानकर सामान्य का अवलंबन करना, यह तो धर्म की बात है। सामान्य का अवलंबन किसप्रकार करना? कि ध्रुव स्वभाव चिदानंद की महिमा जानकर पर्याय को उसमें अंतर्मुख करना, इसका नाम सामान्य का अवलंबन है। सहज आनंदस्वरूप ऐसे परमात्मा का अवलंबन करने से ही परमानंदमय परमात्मदशा प्रगट होती है। पहिले त्रिकाल एकरूप परमात्मस्वरूप आत्मा का यथार्थ तत्त्वज्ञान करना चाहिये। इस तत्त्वज्ञान के बल से केवलदर्शन प्रगट होता है। बीच में राग आये, उसके द्वारा अथवा बाह्य क्रियाकांड के द्वारा केवलदर्शन नहीं होता।

देखिये! तत्त्वज्ञान करने से केवलदर्शन हो जाना कहा। लेकिन किसका तत्त्वज्ञान? कि त्रिकाली आनंदरूप परमात्मा के तत्त्वज्ञान के बल से केवलदर्शन होता है, ऐसा केवलदर्शन हो, तब दर्शनावरणी कर्म का क्षय होता है। इसप्रकार निमित्त का ज्ञान भी साथ-साथ (उपादान और निमित्त) कराता है। द्रव्य-पर्याय और निमित्त इन सब का ज्ञान करा कर एक शुद्ध ज्ञायकस्वरूप ही आदरणीय है, ऐसा यह शास्त्र कहता है, बतलाता है।

इसप्रकार जीव के दर्शनोपयोग के चार भेद कहे। इन चार भेदों में से केवलदर्शन ही उपादेय है। दूसरे तीन दर्शन अपूर्ण हैं, इससे वे उपादेय नहीं है। यहाँ केवलदर्शन को ही उपादेय कहा है। वह पर्याय है, लेकिन वह पर्याय कब होती है? कि त्रिकाली शुद्धद्रव्य को उपादेय करे तब। ऐसा इस कथन का तात्पर्य है।

केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दोनों उपयोग भिन्न-भिन्न हैं। लेकिन उनमें समयभेद नहीं है। एक ही समय में वे दोनों साथ में होते हैं। ऐसा न माने तो जीव का उपयोगस्वभाव पूर्ण नहीं होता। उपयोग दो होने पर भी उसका कर्ता एक ही है और उसकी पूर्ण पर्याय हो गयी है। यहाँ ज्ञान-दर्शन उपयोग के कार्य का भेद नहीं होता। कर्ता जहाँ स्वयं पूर्ण हो गया है, वहाँ दर्शन और ज्ञान के कार्य के समयभेद क्यों रहे? दोनों एक ही उपयोग नहीं, इसलिये उनमें पहिले और बाद में – ऐसा क्रम भी नहीं है। छद्मस्थ को ज्ञान-दर्शन उपयोग की प्रवृत्ति में क्रम रहता है, केवली को ऐसा क्रम नहीं होता।

इसप्रकार जीव के दर्शनोपयोग का वर्णन किया। [क्रमशः]

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न– क्या पर्याय का कारण स्वद्रव्य भी नहीं ?

उत्तर– परद्रव्य से तो अपनी पर्याय होती ही नहीं; और अपनी द्रव्य से पर्याय हुई, ऐसा कहना भी व्यवहार है। वास्तव में तो पर्याय, पर्याय की अर्थात् अपनी ही योग्यता से स्वकाल में होती है, यह निश्चय है। सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पाद हुआ, इसलिये मिथ्यात्व कर्म का नाश हुआ, ऐसा तो है ही नहीं; किंतु वर्तमान पर्याय में सम्यक्त्व का उत्पाद हुआ, इस कारण से पूर्व पर्याय के मिथ्यात्वभाव का व्यय हुआ, ऐसा भी नहीं है। सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पाद स्वतंत्र हुआ है और मिथ्यात्वभाव की पर्याय का व्यय भी स्वतंत्र हुआ है। केवलज्ञान पर्याय का उत्पाद हुआ, वह केवलज्ञानावरणी कर्म के अभाव से हुआ, ऐसा तो है ही नहीं; किंतु अपने द्रव्य के कारण से केवलज्ञानपर्याय का उत्पाद हुआ, ऐसा भी नहीं। पर्याय का पर्याय के षट्कारक से स्वतंत्र उत्पाद हुआ है। यहाँ तो पर्याय का दाता द्रव्य नहीं है, ऐसा कहना है। पर्याय का लक्ष्य द्रव्य के ऊपर जाता है, वह उस पर्याय की स्वयं की सामर्थ्य से ही जाता है; द्रव्य के कारण से नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय का लक्ष्य द्रव्य के ऊपर जाता है, वह उस पर्याय का ही सामर्थ्य है। वह द्वादशांग का दोहन है।

वास्तव में तो पर्याय, पर्याय के स्वकाल से, जन्मक्षण से जो पर्याय होनी हो, वह होती है। द्रव्य से पर्याय होती है – ऐसा कथन भी व्यवहार है। उत्पाद पर्याय को द्रव्य कारण नहीं और व्यय भी कारण नहीं। यह उत्पाद पर्याय का निश्चय है। सम्यग्दर्शन पर्याय द्रव्य के आश्रय से होती है, ऐसा कहना भी अपेक्षित कथन है। सम्यग्दर्शन पर्याय होती है, वह उसका जन्मक्षण है; किंतु उस पर्याय का लक्ष्य द्रव्य के ऊपर है, इसलिये द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कहा जाता है।

वास्तव में तो सम्यग्दर्शन पर्यायका, पर से भिन्न पड़ने का भेदज्ञान पर्याय होने का स्वकाल है, जन्मक्षण है, तभी वह पर्याय होती है। परंतु वह होती किसको है ? जिसका लक्ष्य द्रव्यस्वभाव के ऊपर होता है, उसी को होती है। पर्याय में खड़े-खड़े पर्याय के सन्मुख देखनेवाले को पर्याय के स्वकाल का सच्चा ज्ञान नहीं होता। जैनदर्शन का यह परम सत्य स्वरूप है।

प्रश्न- शास्त्र में व्यवहार को भी प्रशंसनीय कहा है ?

उत्तर- निश्चय शुद्धात्मा की भावनावाले जीव को अर्थात् साधक जीव को जब तक पूर्ण वीतरागता प्रगट न हो, तब तक निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ जो व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नव तत्त्व का ज्ञान और पंच महाव्रत का आचरण है, उसको निश्चय का सहकारी जानकर प्रशंसनीय कहा है। उसे व्यवहार से मोक्षमार्ग भी कहा है, तथापि परमार्थ से तो वह बंधमार्ग ही है। अत: निश्चय शुद्धात्मा की भावना के काल में वह व्यवहार प्रशंसा योग्य नहीं है। साधक जीव को पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक अर्थात् प्रथम अवस्था में व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-आचरण को प्रशंसनीय कहा है तो भी शुद्धात्मा की भावना के काल में प्रशंसा योग्य नहीं है।

प्रश्न- मोक्षमार्ग तो दो प्रकार का है न ?

उत्तर- मोक्षमार्ग दो प्रकार का है, वह व्यवहार और दूसरा निश्चय। निश्चय तो साक्षात् मोक्षमार्ग है, व्यवहार परम्परा है। अथवा सविकल्प-निर्विकल्प के भेद से निश्चय मोक्षमार्ग भी दो प्रकार का है। मैं अनंत ज्ञान स्वरूप हूँ, शुद्ध हूँ, एक हूँ, अखंड हूँ, ध्रुव हूँ, ऐसा चिंतवन सविकल्प निश्चयमोक्षमार्ग है और उसे साधक कहा है तथा सविकल्प चिंतवन छूटकर निर्विकल्प आत्म-अनुभव होना निश्चय मोक्षमार्ग है और वह साध्य है।

'रहस्यपूर्ण चिट्ठी' में कहा है कि प्रथम 'मैं शुद्ध हूँ' आदि चिंतवन से आत्मा में अहंपना धारण करता है, तत्पश्चात् वह विकल्प भी छूटकर निर्विकल्प होता है। इस

रीति से सविकल्प चिंतवन को – सविकल्प निश्चयमोक्षमार्ग को साधक कहा और निर्विल्प ध्यान को – निर्विकल्प निश्चयमोक्षमार्ग को साध्य कहा है।

जैसे, देव–गुरु–शास्त्र की रागमिश्रित श्रद्धा को व्यवहार सम्यक्त्व कहा है। किंतु वह सम्यक्त्व है नहीं – है तो वह राग, परंतु सम्यक्त्व का आरोप करके उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन कह दिया है। वैसे ही यहाँ निश्चयमोक्षमार्ग का आरोप करके सविकल्प चिंतवन से सविकल्प मोक्षमार्ग कहा है। स्व के आश्रय का विकल्प है, इसलिये उसे साधक कहा है। यहाँ विकल्प है तो बंध का ही कारण, तथापि निश्चय का आरोप करके उसे साधक कहा है। 'मैं शुद्ध हूँ' आदि निश्चय के सविकल्प चिंतवन को निश्चयनय का पक्ष कहा है न! उसीप्रकार यहाँ भी आरोपित कथन किया गया है।

समाचार दर्शन

सोनगढ़ : पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी अब स्वस्थ व प्रसन्न हैं। प्रवचन चालू हो गये हैं। अब उनका १३ अप्रेल से २० अप्रेत तक का जामनगर का कार्यक्रम है, जन्म–जयंती वहीं होगी। उसके बाद बंगलौर का कार्यक्रम है। तत्पश्चात् मद्रास का २६ अप्रेल से ३ मई और बम्बई में ४ मई से १८ मई का पूर्व कार्यक्रमानुसार ही है। शेष कार्यक्रम निरस्त समझे जावें।

श्री सम्मेदशिखर शिक्षण शिविर सानंद संपन्न

श्री सम्मेदशिखर : इस पावन भूमि पर अष्टाह्निका महापर्व की मंगलबेला में श्री आदरणीय पंडित बाबूभाईजी मेहता के सान्निध्य में आयोजित तृतीय शिक्षण शिविर एवं सिद्धचक्र मंडल विधान दिनांक ५ मार्च, १९७७ को सानंद संपन्न हुआ।

इस आयोजन की कुछ अपनी विशेषतायें थीं :–

(१) प्रात: ४.३० से कार्यक्रम प्रारंभ होकर रात्रि १० बजे तक करीब १४ घंटे प्रतिदिन

जिनेन्द्र भक्ति, विधान, शिक्षण कक्षायें एवं प्रवचन के सामूहिक कार्यक्रम चलते थे।

(२) इस महान आयोजन में देश के कोने-कोने से १५३ दूरस्थ स्थानों से एवं आस-पास के अनेक गाँवों के करीब आठ-दस हजार लोगों ने भाग लिया।

(३) आदरणीय बाबूभाईजी मेहता के समयसार गाथा ४, ५, ६ पर हुए सारगर्भित प्रभावशाली प्रवचनों से जनता प्रभावित रही।

पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा के प्रवचन भी जहाँ-तहाँ चर्चा के विषय बने रहे। शिक्षण कक्षाओं के संचालन में विशेषरूप से पंडित प्रकाशचंदजी शास्त्री दिल्ली, पंडित नेमीचंदभाई रखियाल, श्री नेमीचंदजी पाटनी आगरा, पंडित जवाहरलालजी विदिशा का सहयोग सराहनीय रहा।

(४) श्री कन्नूभाईजी दाहोद ने भक्ति के कार्यक्रमों में चार चाँद लगा दिये थे। इसके सिवा पंडित गोविंदरामजी खंडेरी, पंडित घासीरामजी गुना, पंडित शिखरचंदजी विदिशा, पंडित संतोषकुमारजी विदिशा ने भी शिक्षण कक्षाओं में सहयोग दिया।

(५) इस सुअवसर पर निर्माणाधीन महावीर-कुन्दकुन्द स्वाध्याय भवन को - जो ३ वर्ष पूर्व महावीर धर्मचक्र गुजरात तीर्थयात्रा संघ के आगमन के अवसर पर प्रदत्त एक लाख रुपये से अधिक की राशि द्वारा प्रारंभ हुआ था - पुनः श्री बाबूभाई की प्रेरणा से करीब डेढ़ लाख रुपये से अधिक की दानराशि प्राप्त हुई।

(६) इन दिनों करीब ६ हजार रुपये से अधिक की साहित्य बिक्री भी हुई।

(७) ३९४ आत्मधर्म के ग्राहक बने, जिनमें १८२ आजीवन सदस्य बने। साथ ही ११५ सन्मति संदेश के ग्राहक बने, इनमें भी ५ आजीवन सदस्य हैं।

(८) आठ वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं को २०००/- वार्षिक अनुदान प्राप्त हुआ। अंतिम दिन सभी बालकों को पुरस्कार वितरण भी किया गया।

(९) इस प्रभावशाली आयोजन से प्रेरणा प्राप्त कर अनेक स्थानों की ओर से उनके यहाँ शिविर लगाने के आमंत्रण प्राप्त हुये।

ध्यान रहे यह आयोजन श्री बाबूभाईजी मेहता द्वारा पिछले ३ वर्षों से प्रतिवर्ष किया जा रहा है, जो क्रमशः प्रगति पर है। श्री बाबूभाईजी का यह कार्यक्रम वस्तुतः अनुकरणीय है।

- दिलीप, कलकत्ता

वार्षिक मेला संपन्न

मक्सीजी : यहाँ दो दिवसीय वार्षिक मेला १३ मार्च को सानंद संपन्न हुआ। उक्त अवसर पर अध्यात्मप्रवक्ता पंडित बाबूभाई मेहता, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा तथा पंडित जवाहरलालजी विदिशा आदि के पधारने से महती धर्म प्रभावना हुई। प्रवचन एवं भक्ति के कार्यक्रमों के अतिरिक्त महिला सम्मेलन, नवयुवक सम्मेलन, वकील सम्मेलन भी हुए। वीतराग-विज्ञान पाठशाला के छात्रों के द्वारा अकलंक-निकलंक नाटक बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया। अंतिम दिन रथयात्रा समारोह में लगभग ५००० व्यक्तियों ने भाग लिया। आत्मधर्म के आजीवन व वार्षिक अनेकों ग्राहक बने। **- विमलचंद झांझरी, उज्जैन**

श्री सोनागिरजी : विगत दिनों यहाँ का वार्षिक मेला-महोत्सव सानंद संपन्न हुआ। विविध कार्यक्रमों के अतिरिक्त शिक्षण शिविर का भी आयोजन किया गया। इस अवसर पर ब्रह्मचारी हेमराजजी, पंडित धन्नालालजी ग्वालियर, पंडित केशरीचंदजी धवल, पंडित कन्नूभाई दाहोद, पंडित बाबूलालजी 'भजनसागर' अशोककुमार आदि विद्वानों के प्रवचनों से महती धर्म प्रभावना हुई। प्रतिदिन चार समय प्रवचन तथा भक्ति आदि का कार्यक्रम बहुत ही सुंदर रहा। इस पाँच दिवसीय शिक्षण शिविर से विभिन्न नगरों से पधारे साधर्मीजनों में अत्यंत उत्साह एवं धार्मिक जागृति उत्पन्न हुई। **- सुभाषचंद जैन, ग्वालियर**

हिम्मतनगर : महावीरनगर स्थित श्री दिगम्बर जिन मंदिर का दशवर्षीय महोत्सव अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर बड़े ही उल्लासपूर्वक मनाया गया, जिसमें पंचमेरु-नंदीश्वर मंडल विधान सानंद संपन्न हुआ। स्मरण रहे कि उक्त मंदिर का निर्माण आज से दश वर्ष पूर्व पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के सदुपदेशों से प्रेरणा पाकर हुआ था।

- ताराचंद पोपटलाल कोठारी, हिम्मतनगर

जैन विद्यार्थीगृह, सोनगढ़ में अपने बच्चों को प्रवेश दिलाइये

उपरोक्त छात्रावास में अध्ययन हेतु कक्षा ५ से १२ तक के लिये १० वर्ष से १८ वर्ष तक

के जैन छात्रों को प्रवेश दिया जाता है। यहाँ लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षण भी दिया जाता है तथा पूज्य स्वामीजी के सान्निध्य का लाभ भी मिलता है। निवास व भोजन की अच्छी व्यवस्था है। यद्यपि प्रत्येक छात्र पर लगभग १२०) रुपया मासिक खर्च आता है, तथापि पूरी फीस के रूप में ६०) रुपये तथा आधी फीसवालों से ३५) रुपया मासिक ही लिया जाता है। जो छात्र प्रवेश चहाते हों वे ५० पैसे भेजकर प्रवेश पत्र व नियमावली मंगा लें तथा उसे भरकर वार्षिक परीक्षा की अंक सूची के साथ २०-५-७७ से पूर्व भेज दें।

मंत्री, जैन विद्यार्थीगृह, सोनगढ़, जिला भावनगर (गुजरात)

भावनगर : गुरुदेव कार्यक्रमानुसार २९ फरवरी को पधारे थे। उनके दो भावभीने प्रवचन भी हुए। बाद में अस्वस्थ हो जाने से उनके प्रवचन नहीं हो सके। पूज्य बेनश्री चंपाबेन एवं श्री शांताबेन की उपस्थिति में वीतराग-विज्ञान पाठशाला के बालकों द्वारा बालबोध पाठमालाओं के 'गति', 'भगवान महावीर', 'द्रव्य' आदि पाठों को संवाद के रूप में अभिनय के साथ प्रस्तुत किया गया। पूज्य बहिन श्री बहिन ने बहुत प्रसन्न और आनंद-विभोर होकर सुने। बच्चों को पारितोषिक भी दिये गये। **- हिम्मतलाल, प्रमुख, दिग० जैन मुमुक्षु मंडल, भावनगर**

टिमरनी (म.प्र.) : यहाँ १२ मार्च, ७७ से १४ मार्च, ७७ तक वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव कार्यक्रम सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर पंडित धन्नालालजी ग्वालियर के पधारने से महती धर्मप्रभावना हुई। श्री डालचंदजी सर्राफ एवं पंडित अभिनंदनकुमारजी भोपाल भी इस अवसर पर उपस्थित थे। **- कस्तूरचंद जैन**

शौरीपुर-बटेश्वर (सिद्धक्षेत्र) : यहाँ १० मार्च, १९७७ को श्री साहू शांतिप्रसादजी पधारे। आपने लगभग दो लाख रुपये की लागत से बननेवाले क्षेत्र के मंदिर का दरवाजा एवं धर्मशाला बनवाने हेतु स्वीकारता प्रदान की। श्री साहूजी के साथ २५००वें निर्वाण महोत्सव सोसायटी दिल्ली के मंत्री श्री भगतरामजी भी थे। **- प्रतापचंद बरौल्या, महामंत्री**

ललितपुर : यहाँ दिनांक २३-२-७७ से १-३-७७ तक सात दिन के लिये पंडित कैलाशचंदजी बुलंदशहरवालों के पधारने से धार्मिक जागृति हुई। वे ऐसी अद्‌भुत शैली से पढ़ाते हैं कि श्रोताओं को विषय शीघ्र तैयार हो जाता है। **- भानुकुमार जैन**

आवश्यक सूचना

जैसा कि फरवरी १९७७ के अंक में सूचित किया गया है, मोक्षमार्गप्रकाशक का नया संस्करण प्रकाशित हो रहा है। लेकिन उसमें अभी ३-४ माह का समय लगेगा। उसकी माँग अधिक है और हमारे पास एक भी प्रति उपलब्ध नहीं है, अत: जिन भाइयों, मंदिरों व मुमुक्षु मंडलों के पास मोक्षमार्गप्रकाशक की प्रतियाँ उपलब्ध हों, वे कृपया हमें शीघ्र ही सूचित करने का कष्ट करें। ताकि उनकी इन प्रतियों से हम आवश्यक माँग को पूरा कर सकें।

इसके बदले में उनको नवीन मोक्षमार्गप्रकाशक या मूल्य जैसा भी वे चाहेंगे सहर्ष भेज दिया जावेगा।

कृपया ध्यान रखें कि अभी सूचना ही इधर भिजवावें। प्रतियाँ हमारा पत्र मिलने पर ही भिजवावें। **- मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**

ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

आवश्यकता है :- एक ऐसे अध्यापक की जो स्थानीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला में श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड की पाठ्य-पुस्तकें पढ़ा सके। पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से प्रशिक्षित अध्यापक को प्राथमिकता दी जावेगी। वेतन योग्यतानुसार।

- उग्रसेन बण्डी, बण्डी गारमेंट्स, बड़ा बाजार, उदयपुर (राज.)

आवश्यकता है :- एक अनुभवी योग्य फोटोग्राफर तथा एक ओवरसियर (जूनियर इंजीनियर) की। मुख्य कार्य भ्रमणशील सर्वेक्षण पार्टी के साथ रहकर श्री दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्रों की फोटोग्राफी एवं नक्शे आदि बनाने का रहेगा। नियुक्ति अविलंब करनी है, अत: तत्काल लिखें। उचित वेतन व अन्य सुविधाएँ प्राप्त रहेंगी।

- ज्ञानचंद जैन, संयोजक, श्री कुंदकुंद कहान दि० जैन तीर्थ सर्वेक्षण समिति

द्वारा ज्ञानानंद निवास, किला अंदर, विदिशा (म.प्र.)

पाठकों के पत्र

पूना (महाराष्ट्र) से श्री पंडित उत्तमचंदजी, एम.ए., बी.एड. लिखते हैं –

अब आत्मधर्म में पाठकों का आकर्षण अत्यधिक बढ़ गया है। उसका मूल कारण है गुरुदेव की अनमोल वाणी के साथ-साथ संपादकीय लेखों की गंभीरता एवं मौलिकता। दूसरे यदाकदा प्रकाशित होनेवाले 'इंटरव्यू' वगैरह। क्षमा, मार्दव आदि पर मौलिक विचार पढ़े तो काफी आनंद आया।

ललितपुर (उ० प्र०) से श्री रमेशकुमारजी जैन लिखते हैं :-

अब पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन बहुत सरस एवं सरल भाषा में – जो कि साधारण जनमानस के गम्य हैं आ रहे हैं – जो कि एक बहुत सुंदर आवश्यक कार्य हुआ है। इन दोनों इंटरव्यू का प्रभाव हम जैसे नवयुवकों पर बहुत अच्छा पड़ा एवं सत्य बात प्रकाश में आयी, समाज की काफी भ्रांतियाँ दूर हुईं। अब समाज भ्रामक प्रचार एवं प्रचारकों से सावधान होती जा रही है। आशा है, अब इस तरह के और स्तंभ बार-बार आवें जिससे तत्त्वप्रचार में प्रगति हो।

भावनगर (गुजरात) से श्री हीरालालजी लिखते हैं :-

जनवरी आत्मधर्म में आपने 'एक आत्मा का ही ध्यान कर' लेख में ब्रह्मचारी रायमलजी का 'चर्चा संग्रह' में से जो हूबहू उनकी भाषा में ही लेख दिया है, वह अति उत्तम प्रयास है। आत्मधर्म में हर मास ऐसे ही पुराने साधर्मी भाईयों के लेख देवें तो इसकी रोचकता और बढ़ेगी तथा मुमुक्षुओं को प्रेरणादायक निज-हित की सामग्री मिलती रहेगी।

चिरगांव (उ० प्र०) से श्री लालचंदजी जैन लिखते हैं :-

यहाँ पर आत्मधर्म नियमितरूप से आ रहा है। संपादकीय लेख पढ़कर हृदय में अनुपम आनंद की अनुभूति होती है। समय-समय पर स्वामीजी के लिये गये इंटरव्यू भ्रांत धारणाएँ मिटाने में अत्यंत सहायक व उचित हैं। आगे भी इंटरव्यू का क्रम जारी रहे, यही आशा है।

दुर्ग (म० प्र०) से श्री कुन्दनमलजी सेठी लिखते हैं :-

आत्मधर्म में दशधर्म पर लेख क्रमवार प्रकाशित हो रहे हैं, उन्हें पढ़ने पर आनंद आता है। ऐसा अनुभव होता है कि पर्व ही आया है।

जगदलपुर (म० प्र०) से श्री लक्ष्मीचंदजी लिखते हैं :-

आपके विश्लेषणपूर्ण संपादकत्व में 'आत्मधर्म' ने स्वभाव को स्वाभाविकरूपेण सचेत-सचेष्ट कर, संसार की अंध भूलभुलैया में सिर धुनते जीवों के हितार्थ प्रथम-द्वार के दर्शन कराकर जो उपकार किया है, वह अवर्णनीय है, केवल अनुभवगम्य ही है।

सहजपुर (म० प्र०) से श्री कोमलचंदजी जैन लिखते हैं :-

आत्मधर्म में स्वामीजी के एवं आपके वचनामृत पान करके हृदय में कभी भी ऊब नहीं आती। संपादकीय में तो आपके साक्षात् दर्शन हो जाते हैं।

जलेश्वर (उ० प्र०) से श्री प्रद्युम्नकुमारजी लिखते हैं :-

आत्मधर्म की भाषा शैली बहुत ही मधुर एवं रोचक है, अतः उसमें किसी भी विषय को छोड़ने की इच्छा नहीं होती। आत्मधर्म में कुछ और सामग्री का समावेश करके पृष्ठों की संख्या बढ़ा दी जाए तो पाठकों को और अधिक लाभ पहुँच सकता है।

नये प्रकाशन :-

मोक्षशास्त्र **टीका - श्रीरामजी भाई**

[१००० पृष्ठों से अधिक] मूल्य : १२) रुपये

सत्तास्वरूप **लेखक - पंडित भागचंदजी छाजेड़**

[गोम्मटसारपीठिका, समाधिमरण, सामायिक पाठ तथा जिनवाणी इक्कीसी सहित]

[पृष्ठ १४२] मूल्य : १) ७०

समयसार कलशटीका: भाषाटीकाकार - पांडे राजमलजी

मूल्य : ६) रुपये

युगपुरुष श्री कानजीस्वामी

[इस पुस्तक में डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, युगलजी, श्री नेमीचंदजी पाटनी एवं पंडित रतनचंदजी शास्त्री विदिशा के निबंध एवं पूज्य गुरुदेव के लिये गये इंटरव्यू हैं।]

[पृष्ठ १०८] मूल्य : १) रुपया

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें :-

(१) महावीरजयन्ती एवं कानजीस्वामी जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में आत्मधर्म की आजीवन सदस्यता शुल्क एक माह के लिये १०१) रुपये से घटाकर ७६) रुपये कर दी गयी है। इस सुविधा का लाभ ७ मई, १९७७ तक उपलब्ध रहेगा।

(२) जो सदस्य वार्षिक ग्राहक से आजीवन ग्राहक बनना चाहें, वे कृपया अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखें – ताकि उनका नाम वार्षिक सदस्यता सूची में से पृथक् किया जा सके।

(३) आत्मधर्म हिन्दी के संबंध में जो भी पत्र-व्यवहार करना हो, जयपुर से करें, सोनगढ़ से नहीं।

(४) जिन सज्जनों को डबल अंक प्राप्त हो रहे हैं, वे कृपया अपने दोनों ग्राहक नंबर लिखें ताकि उनका एक अंक बंद किया जा सके।

आत्मधर्म के स्वामित्व का विवरण

फार्म नं० ४, नियम नं० ८

समाचार पत्र का नाम	:	आत्मधर्म (हिन्दी)
प्रकाशन का स्थान	:	ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी	:	श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ (सौराष्ट्र, गुजरात)
संपादक	:	डॉ० हुकमचंद भारिल्ल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
मुद्रक	:	जयपुर प्रिंटर्स, मिर्जा इस्माइल रोड, जयपुर ३०२००१

मैं, डॉ० हुकमचंद भारिल्ल, एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं। – **डॉ० हुकमचंद भारिल्ल,** संपादक

एक धर्म ही उपादेय है

महापंडित टोडरमलजी के सान्निध्य में वि० सं० १८२१ में जयपुर में 'इंद्रध्वज विधान महोत्सव' नामक विशाल उत्सव हुआ था। इसकी आमंत्रण पत्रिका[१] साधर्मी भाई ब्रह्मचारी रायमलजी ने लिखकर समस्त भारतवर्ष में भेजी थी। साधर्मी भाइयों को प्रेरणा देते हुए वे उसमें लिखते हैं :-

''बहुरि देखो ए प्राणी कर्म कार्य कै अर्थि तौ समुद्र पर्यन्त जाय है वा विवाहादिक के कार्य विषै भी सौ पचास कोस जाय है, अर मनमान्या द्रव्यादिक खरचै है। ताका फल तौ नर्क निगोदादि है। ता कार्य विषै तौ या जीव के अैसी आसक्तता पाईए है, सो ए तौ वासना सर्व जीवनि कै बिना सिखाई हुई स्वयमेव बणि रही है; परन्तु धर्म की लगनि कोई सत्पुरुषां कै ही पाईए है।

विषय-कार्य के पोषने वाले तौ पैंड-पैंड विषै देखिए है, परमार्थ कार्य के उपदेशक वा रोचक महादुर्लभ बिरले ठिकाणैं कोई काल विषै पाईए है। तातैं याकी प्रापती महाभाग्य के उदै काललब्धि के अनुसारि होय है।

यह मनुष्य पर्याय जावक खिनभंगर है, ता विषै भी अबार के काल मैं जावक अल्प बीजुरी का चमत्कारवत थिति है। ताकै विषै नफा टोटा बहुत है। एकां तरफ नैं तौ विषय कषाय का फल नरकादिक अनंत संसार का दुख है। एकां तरफ नैं सुभ सुद्ध धर्म का फल स्वर्ग मोक्ष है। थोड़ा सा परणांमां का विशेष करि कार्य विषै एता तफावत (फरक) परै है।

सर्व बात विषै एह न्याय है। बीज तौ सर्व का तुछ ही होइ है अर फल वाका अपरंपार लागै है, तातैं ज्ञानी विचक्षण पुरषन कै एक धर्म ही उपादेय है।''

---

१. उक्त पठनीय पत्रिका अविकलरूप से 'पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' में छप भी चुकी है।

Reg. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

	रु० पैसे		रु० पैसे
समयसार	१२-००	पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	१०-००
प्रवचनसार	१२-००	तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
पंचास्तिकाय	७-५०	" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
नियमसार	५-५०	मैं कौन हूँ?	१-००
अष्टपाहुड़	१०-००	पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य	०-६५
समयसार नाटक	७-५०	कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य	०-३०
समयसार प्रवचन भाग १	४-५०	वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
समयसार प्रवचन भाग २	४-५०	अनेकांत और स्याद्वाद	०-३५
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००	तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००	वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
आत्मावलोकन	३-००	सत्य की खोज (कथानक)	प्रेस में
श्रावकधर्म प्रकाश	३-००	अपने को पहचानिए	०-५०
छहढाला (सचित्र)	१-५०	पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक और उसकी ग्यारह प्रतिमाएँ	०-३५
द्रव्यसंग्रह	१-२०	अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०	मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
प्रवचन परमागम	२-५०	बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
धर्म की क्रिया	२-००	बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०	बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
बालपोथी भाग १	०-२५	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
बालपोथी भाग २	०-४०	सुंदर लेख बालबोध पाठमाला भाग १	०-२५
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	३-००	आगम पथ : कानजीस्वामी विशेषांक	३-००
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००	वीतराग-विज्ञान भाग ३	१-००
परमात्म पूजा संग्रह	२-००	(छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	
मोक्षमार्गप्रकाशक	५-००		

*** श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)**

*** पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४**